॥ श्री ॥

नंददास कृत

भँवर-गीत

सम्पादक—
विश्वम्भर नाथ मेहरोत्रा, एम० ए०
भू० पू० रिसर्च स्कालर, हिन्दी-विभाग,
प्रयाग-विश्वविद्यालय

प्रकाशक
रामनारायण लाल
पब्लिशर और बुकसेलर
इलाहाबाद
१९३९

द्वितीय संस्करण]   [मूल्य १)

श्रीगुरु-पाद-पद्मेषु

भूमिका

कविपरिचय

जिस प्रकार हिन्दी के बहुतेरे अन्य कवियों की जन्म-तिथि, निवास-स्थान, वंश आदि के विषय में संदेह है, उसी प्रकार नंददास जी का भी विस्तृत वृत्तान्त अज्ञात है।

जीवनी

नंददास जी कब हुए थे, कहाँ हुए थे, कौन उनके माता-पिता थे—इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि नंददास जी ने अपने ग्रन्थों में अपने सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा है। ऐसी दशा में यदि नंददास जी के सम्बन्ध में कुछ कहा जा सकता है तो वह केवल प्राचीन ग्रन्थों में आए हुए थोड़े से उल्लेखों के आधार पर ही कहा जा सकता है। ये उल्लेख हमें नाभादास कृत 'भक्तमाल,' बाबा बेनीमाधव दास कृत 'मूल गोसाईं चरित' तथा गोसाईं गोकुल नाथ[1] कृत '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में मिलते हैं। अतः इन्हीं उल्लेखों के आधार पर हम नंददास जी के सम्बन्ध में कुछ विचार करेंगे।

---

१ अब कुछ विद्वान '२५२ वार्ता' को गोसाईं गोकुल नाथ कृत न मानकर किसी अन्य वैष्णव की रचना मानने लगे हैं। (दे० हिन्दुस्तानी, अप्रैल, सन् १९३२ पृ० १८३ से १८९ तक।)

भक्तमाल का उल्लेख—

'भक्तमाल' की रचना लगभग १५९२ ई० के हुई थी। इस ग्रन्थ में नंददास जी के सम्बन्ध में एक छप्पय दिया हुआ है। छप्पय इस प्रकार है—

लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना में नागर।
सरस उक्तियुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर॥
प्रचुर पयध लौं सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संवलित भक्त पद रेनु उपासी॥
चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पै मै पगे।
(श्री) नन्ददास आनन्द निधि रसिक सु प्रभु हित रँग मगे॥

छप्पय द्वारा पता चलता है कि नंददास जी रामपुर ग्राम के निवासी थे। यह कौन रामपुर है, इस सम्बन्ध में अभी कुछ निश्चय नहीं हो सका है, कारण कि रामपुर नाम से कई ग्राम विख्यात हैं। छप्पय से यह भी पता चलता है कि नंददास जी चंद्रहास के भाई थे। यह कौन चंद्रहास हैं, इस सम्बन्ध में भी अभी कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता।

'मूल गोसाईं चरित' का उल्लेख[1]—

---

[1] नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से १९२५ ई० में प्रकाशित 'रामचरित मानस' के एक संस्करण के साथ 'मूल गोसाईं चरित' सर्व प्रथम प्रकाशित हुआ था। दो वर्ष बाद ना० प्र० पत्रिका के भाग ७, अंक ४ में बाबू श्याम-सुन्दर दास ने उसे प्रकाशित करते हुए अपने विचार विस्तार सहित प्रकट किए और अन्य विद्वानों की सम्मतियाँ माँगीं। जो सम्मतियाँ उन्हें मिलीं,

'मूल गोसाईं चरित' की रचना लगभग १६३० ई० के हुई थी। इस ग्रंथ के अनुसार तुलसीदास जी तीर्थ-यात्रा करते हुए १५६२ ई० के लगभग वृन्दावन पहुँचे थे और वहाँ नंददास जी की उनसे भेंट हुई थी। काशी में इन दोनों ने शिक्षा पाई थी। शेष सनातन इनके गुरु का नाम था। अतएव, ये दोनों गुरुभाई थे। जाति के कनौजिया ब्राह्मण थे [1]।

२५२ वार्ता का उल्लेख—

वार्ता के अनुसार नंददास जी तुलसीदास जी के छोटे भाई थे [2]। एक बार नंददास जी ने द्वारका जाने का निश्चय

उनको उन्हों ने ना० प्र० पत्रिका के भाग ८, अंक १ में प्रकाशित किया। उन सम्मतियों में से अधिकांश ने 'मूल गोसाईं चरित' की सामग्री को प्रामाणिक माना है, किन्तु अब कुछ विद्वानों को 'मूल गोसाईं चरित' की प्रामाणिकता में संदेह होने लगा है, जिनमें पं० रामचन्द्र शुक्ल, राय कृष्ण दास तथा डा० रामप्रसाद त्रिपाठी प्रमुख व्यक्ति हैं। (दे० हिन्दुस्तानी, भाग २, अंक ३ में 'मूल गोसाईं चरित की ऐतिहासिकता पर कुछ विचार' शीर्षक लेख।)

१ नंददास कनौजिया प्रेम मढ़े। जिन शेष सनातन तीर पढ़े॥
 शिक्षा गुरु बंधु भये तेहि ते। अति प्रेम सों आय मिले यहि ते॥

(दे० ना० प्र० प०, भाग ७, अंक ४ में प्रकाशित 'मूल गोसाईं चरित', पृ० ३८७)

२ 'नन्ददास जी तुलसीदास के छोटे भाई हते।' (दे० 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता,' पृ० २८, डाकोर वाला संवत् १९६० का

किया। द्वारका जाते समय यह मार्ग भूल गए और भूलते भटकते सिन्ध नद ग्राम में जा निकले। यहाँ यह एक रूपवती खत्रानी पर आसक्त हो गए और उसके घर के चारों ओर परिक्रमा देने लगे। स्त्री के घर वाले इनसे छुटकारा पाने के लिए स्त्री को साथ लेकर गोकुल चले गए। नंददास जी भी उनके पीछे पीछे गोकुल जा पहुँचे। गोसाईं विठ्ठलनाथ जी को जब इस बात की सूचना मिली तो उन्होंने नंददास जी को बुलाकर सदुपदेश दिया। उपदेश से नंददास जी का मोह भंग हुआ और यह उनके शिष्य हो गए। शिष्य होने पर यह गोकुल व गोवर्द्धन में ही अधिकतर रहने लगे[1]।

संस्करण।)

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में 'गोस्वामी जी का नंददास जी से कोई भी सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया है। वह इतिहास के १६८ वें पृष्ठ पर लिखते हैं—

'गोस्वामी जी का नंददास जी से कोई सम्बन्ध न था। २५२ वार्ता की बातों को, जो वास्तव में भक्तों का गौरव प्रचलित करने और वल्लभाचार्य जी की गद्दी की महिमा प्रकट करने के लिए पीछे से लिखी गई हैं, प्रमाण कोटि में नहीं ले सकते।'

१ 'इस कथा में ऐतिहासिक तथ्य केवल इतना ही है कि नंददास जी ने गोसाईं विट्ठलनाथ से दीक्षा ली।' (दे० पं० रामचन्द्र शुक्ल कृत 'हिन्दीसाहित्य का इतिहास' पृ० १६८, संवत् १६८६ वाला संस्करण।)

उपर्युक्त ग्रन्थों में 'मूल गोसाईं चरित' में दी हुई सामग्री की ऐतिहासिकता पर विद्वानों को संदेह होने लगा है।

निष्कर्ष

संदेह के जो कारण बतलाए गए हैं, वे बहुत अंशों में ठीक भी प्रतीत होते हैं। इसीलिये जब तक 'मूल गोसाईं चरित' पर कोई नवीन प्रकाश नहीं डाला जाता तब तक उसके आधार पर नंददास जी की जीवनी के सम्बन्ध में कुछ कहना युक्तियुक्त न होगा।

'दो सौ बावन वार्ता' में आए हुए बहुत से उल्लेखों को भी कुछ विद्वान प्रामाणिक नहीं मानते। वास्तव में २५२ वार्ता में दी हुई बहुत सी कथाएँ हैं भी ऐसी जो नितान्त कपोलकल्पित ज्ञात होती हैं। उन कथाओं को पढ़ने से यही प्रतीत होता है कि वे पुष्टि-मार्ग की महत्ता प्रदर्शित करने के लिए बहुत बाद में लिखी गई होंगी। ऐसी दशा में यदि २५२ वार्ता के आधार पर नंददास जी के सम्बन्ध में कुछ कहा जा सकता है तो केवल इतना ही कि वह गोसाईं विट्ठलनाथ के शिष्य थे। गोसाईं विट्ठलनाथ का समय लगभग १५१५ ई० से १५८५ ई० तक माना जाता है, अतएव नंददास जी का समय भी अनुमान से ईसवी सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भाग रहा होगा।

अन्त में 'भक्तमाल' ही एक ऐसा ग्रंथ रह जता है, जिसकी मौलिकता तथा ऐतिहासिकता पर अभी तक किसी को भी संदेह नहीं हो सका है। अतएव, इस ग्रंथ के अनुसार हम नंददास जी के सम्बन्ध में केवल इतना ही कह सकते हैं कि वह रामपुर निवासी चंद्रहास के भाई थे।

नंददास जी की जीवनी तथा उनके समय के सम्बन्ध में 'टैसी'[1], 'शिवसिंह सरोज', ग्रियर्सन कृत 'माडर्न वर्नैक्युलर लिट्रेचर आव् हिन्दुस्तान', 'मिश्रबन्धु विनोद' तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' आदि ग्रन्थों में उपर्युक्त सामग्री के अतिरिक्त कोई नवीन उल्लेख नहीं मिलता। केवल किंवदंतियों के आधार पर 'सरोज', वर्नैक्युलर लिट्रेचर आव् हिन्दुस्तान' एवं 'विनोद' में नंददास जी को गोसाईं विट्ठलनाथ द्वारा स्थापित अष्टछाप में से एक कहा है।

---

१ गार्सां दी टैसी (Garcin de Tassy) नामक एक फ्राँसीसी विद्वान ने हिन्दुस्तानी (हिन्दी व उर्दू दोनों के) कवियों तथा उनके ग्रंथों के सम्बन्ध में 'सरोज' के ढंग का ग्रंथ फ्राँसीसी भाषा में बनाया। इस ग्रंथ, 'इसत्वार दे ला लितेरात्यूर हेंदू व हेंदुस्तानी' (Historie de la litterature Hindoui et Hindoustani) का प्रथम संस्करण सन् १८३९ ई० तथा द्वितीय संस्करण सन् १८७१ ई० में प्रकाशित हुआ। यह ध्यान देने योग्य है कि इसका प्रथम संस्करण 'सरोज' की रचना (१८७७ ई०) के ३८ वर्ष पहिले हुआ।

नंददास जी के ग्रंथों के सम्बन्ध में 'भक्तमाल' में केवल इतना ही लिखा है कि इन्होंने कृष्णलीला पर पद ग्रंथ बनाए और रस रीति ग्रंथ भी रचे। 'दो सौ बावन वार्त्ता' में कृष्ण जी की किशोर-लीला पर पद रचने की बात लिखी है, किन्तु किसी विशेष ग्रंथ का नाम नहीं दिया है। ना. प्र. सभा, काशी, द्वारा प्रकाशित हस्त-लिखित हिन्दी ग्रंथों की खोज सम्बन्धी रिपोर्टों में नंददास जी के १५ ग्रंथों का पता मिलता है— १ अनेकार्थ मंजरी,[१] २ नाममाला[२], ३ नासिकेत पुराण[३], ४ दशम स्कंध[४], ५ पंचाध्याई[५], ६ भंवर-गीत[६], ७ भागवत[७], ८ मान मंजरी[८], ९ रस मंजरी[९],

---

१—खो. रि. सन् १९०२ नं० ५८; १९०३ पृ. ८९; सन् १९०९-११ पृ. २९८; सन् १९२०—२२ पृ. ३१९ व ३२०

२—खो. रि. सन् १९०३ पृ. ८९; सन् १९०९—११ पृ. २९७; सन् १९१७—१९ पृ. २६२; सन् १९२०—२२ पृ. ३१६, ३१८ व ३१९

३—खो. रि. सन् १९०९—११ पृ. २९७

४—खो. रि. सन् १९०१ पृ. १७

५—खो. रि. सन् १९०१ पृ. ५९; सन् १९०६—८ पृ. ३१२; सन् १९१७—१९ पृ. २६३

६—खो. रि. सन् १९२०—२२ पृ. ३२१

७—खो. रि. सन् १९०६—८ पृ. ३१२

८—खो. रि. सन् १९०२ नं. २०९; सन् १९०९—११ पृ. २९८

९—खो. रि. सन् १९०९—१२ पृ. २९९

१० रूप मंजरी[1], ११ बिरह मंजरी[2], १२ नाम चिंतामणि माला[3], १३ जोग लीला[4], १४ स्याम सगाई[5], और १५ रुक्मिनी-मंगल[6]।

टैसी ने अपनी पुस्तक में नंददास जी के १४ ग्रंथों का परिचय दिया है।[7] उनमें चार नए नाम मिलते हैं—१ सुदामा चरित्र, २ प्रबोध चंद्रोदय नाटक, ३ गोबर्द्धन लीला और ४ रस मंजरी। खोज के ३, ७, ११, १२ व १४ नम्बर के ग्रन्थों का उल्लेख टैसी ने नहीं किया है। ऊपर दिए हुए चार नए नामों में प्रबोध चंद्रोदय नाटक तो कदाचित् नेवाज कवि की रचना है।

१—खो. रि. सन् १९०६—८ नं. ३०१

२—खो. रि. सन् १९०९—११ पृ. २९९

३—खो. रि. सन् १९०६—८ पृ. ३१२

४—खो. रि. सन् १९०६—८ पृ. ३१२

५—खो. रि. सन् १९०६—८ पृ. ३१२

६—खो. रि. सन् १९१२—१४ पृ. १५२

७—टैसी ने स्वयं रासपंचाध्याई, नाम माला और अनेकार्थ मंजरी नामक तीन ग्रंथ देखे थे ; इनके अतिरिक्त शेष ११ ग्रंथों का संग्रह टैसी ने अपने मित्र डाक्टर स्प्रेन्गर (Dr. Sprenger) के यहाँ हस्तलिखित प्रतियों के एक संग्रह में देखा था जिसमें ५७६ पृष्ठ थे। दे. 'इस्त्वार दे लालितेरात्यूर हेंदु ए हेंन्दुस्तानी' (Histoire de la litterature Hindoui et Hindoustani) द्वितीय संस्करण, भाग २, पृ. ४४५—४७

ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने नंददास जी के दो नए ग्रन्थों के नाम 'सरोज' में दिए हैं—दानलीला और मानलीला।[1] मिश्र बन्धुओं ने भी उपर्युक्त दो ग्रन्थों के अतिरिक्त नंददास जी के दो और ग्रन्थों के नाम दिए हैं—ज्ञान मंजरी और विज्ञानार्थ प्रकाशिका।[2] बाद वाला ग्रंथ 'विज्ञानार्थ प्रकाशिका' नामक संस्कृत ग्रंथ की ब्रजभाषा में टीका है।

इन सब को एकत्रित करने पर नंददास कृत २३ ग्रन्थ ठहरते हैं।[3] इनमें से केवल चार ग्रन्थ—अनेकार्थ मंजरी, नाममाला, रास-पंचाध्याई और भँवर-गीत—छपे हुए हैं और पुस्तकाकार रूप में

१—'शिवसिंह सरोज', सातवाँ संस्करण, पृ. ४४३, नवल किशोर प्रेस।

२—'मिश्रबंधु विनोद' द्वितीय संस्करण, भाग १, पृ. २४८ व २४९

३—श्री जवाहर लाल जी चौबे, मथुरा, ने नंददास जी के निम्नलिखित १९ ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियों का संग्रह किया है—

१ भागवत, २ रासपंचाध्याई, ३ भँवर-गीत, ४ रुक्मिनी-मंगल ५ दानलीला ६ मानलीला, ७ रस-मंजरी, ८ रूप-मंजरी, ९ बिरह-मंजरी, १० नाम-मंजरी, ११ ज्ञान-मंजरी, १२ नाम चिंतामणि माला, १३ अनेकार्थ, १४ नाममाला, १५ स्याम-सगाई, १६ हितोपदेश, १७ नासिकेत पुराण (गद्य में) (दे. माधुरी वर्ष ८, भाग २, संख्या ५, पृ. ६३४) १८ सुदामा-चरित्र तथा १९ पदावली (दे. विशाल भारत, दिसम्बर, सन् १९३१ पृ. ७३०)

उपलब्ध भी हैं। 'रुक्मिनी-मंगल' और 'स्याम-सगाई' भी छप चुके हैं, और पुस्तकाकार रूप में भी उपलब्ध हैं।[१]

जान पड़ता है नंददास जी ने उपर्युक्त २३ ग्रन्थों के अतिरिक्त रस व रीति सम्बन्धी ग्रन्थ भी बनाए थे, जिनका कि अभी तक पता नहीं चल सका है।[२] उन्होंने बहुत से फुटकर पदों की भी रचना की थी।[३] मथुरा में गोकुल नाथ जी के मन्दिर में एक पुराना संग्रह-ग्रन्थ वर्तमान है। यह पुष्टि-मार्ग में मनाए जाने वाले साल भर के उत्सव-सम्बन्धी भिन्न-भिन्न कवियों के पदों का संग्रह है।[४]

१—'रुक्मिनी मंगल' और 'स्याम सगाई' के लिए देखिए विशाल भारत, जनवरी, सन् १९२९ पृ. १२६ से १३० तक और दिसम्बर, सन् १९३१ पृ. ६५४ के ६५६ तक। पुस्तकाकार रूप में ये पुस्तकें अग्रवाल प्रेस, इलाहाबाद, से प्राप्त हो सकती हैं।

२—'लीला पद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर।' (दे. नाभादास कृत भक्तमाल, पृ. ६७८ प्रथम संस्करण, नवल किशोर प्रेस।)

३—(दे. शिवसिंह सरोज, तीसरा संस्करण, पृ. ४४९, नवल किशोर प्रेस।)

४—श्री जवाहर लाल जी चौबे, कुआँ वाली गली, मथुरा, के पास भी इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति वर्तमान है। उदाहरणार्थ उसमें से नंददास जी का एक पद यहाँ दिया जाता है—

"नंददास को पद ॥ राग जैं जैं वंती
माई आज गोकुल गाम कैसो रह्यो फूलि के।
ग्रह फूले दीसें अति संपति समूल को ॥ १ ॥

इस ग्रंथ में नंददास जी के अनेक कृष्ण लीला के पद संग्रहीत हैं।[1]

भ्रमर-गीति और उसका विषय

' भँवर-गीत ' भ्रमर-गीत का अपभ्रंश है। ' भ्रमर-गीत' नाम पड़ने के विषय में निम्नलिखित पौराणिक रहस्य हैः—

मथुरा के राजा कंस ने श्रीकृष्ण जी को मारने के लिए

फूली फूली बरषा होत झर लायो भूमि कें।
फूली घटा आई घर हर घूमि कें॥ २॥
फूलो फूल्यो पुत्र देंष लीयों उर लूमि कें।
फूली हैं जसोदा माय ढोटा मुख चूमि कें॥३॥
देवता अगनित फूलें घ्रत षाड होमिकें।
....................................॥?॥
मालिन वाधें वंदन माला घर घर डोलि कें।
पाटंवर पहरायें अधिक अमोल कें॥ ५॥
फूले हैं भंडार सब द्वारे दीयें षोलि कें।
नंद दान देत फूलें नंददास वोलि कें॥ ६॥

१—इस संग्रह में नंददास का एक पद रामचरित सम्बन्धी भी है। पद का आदि और अंत इस प्रकार है—

आदि " राग मारू जब कूदयो हनुमान उदधि जानकी सुधि लेन को। "

अंत " श्री रामचन्द्र पद प्रताप जग में जस जाको॥
नंददास सुर नर मुनि केतिक भूले ताको॥ "

अनेक उपाय किए, किन्तु वह किसी में भी सफल न हो सका। अन्त में उसने यज्ञ के बहाने अक्रूर को भेजकर कृष्ण और बलराम को गोकुल से मथुरा बुलवा भेजा। मथुरा पहुँचकर कृष्ण जी ने कंस को मारकर उग्रसेन को राजा बनाया और अपने माता पिता, देवकी और वसुदेव को बंदीगृह से छुड़ाया; कुब्जा नामक दासी की सेवा से प्रसन्न होकर उसे अपनी निर्मल भक्ति की अधिकारिणी बनाया। उधर गोकुल में गोपियाँ कृष्ण के विरह में अत्यन्त व्याकुल रहने लगीं। जब नियत समय बीत जाने पर भी कृष्ण जी गोकुल न पहुँचे तब तो गोपियों ने संदेशे भेजने आरम्भ कर दिए। संदेशा पाकर कृष्ण जी ने अपने मित्र उद्धव को गोकुल भेजने का निश्चय किया। उद्धव को गोकुल भेजने में एक रहस्य था, वह यह कि उद्धव को अपने योग और ज्ञान का बड़ा घमंड था। अपने ज्ञान के आगे प्रेम और भक्ति को वह बहुत ही हेय समझते थे; निर्गुण उपासना के आगे सगुण उपासना की हँसी उड़ाते थे। यह सब देखकर कृष्ण जी ने सोचा कि उद्धव का गर्व तभी चूर होगा, जब वह गोकुल जाकर गोपियों की सच्ची भक्ति तथा उनके निर्मल प्रेम का मर्म समझेंगे। अतः उन्हों ने उद्धव को यह कहकर गोकुल भेज दिया कि वह अपने ज्ञान-मार्ग का उपदेश देकर गोपियों को समझा बुझादें और उनके (कृष्ण के) प्रेम से उन्हें विरत करदें जिससे वे उनके विरह में दुःखी न हो सकें।

कृष्णजी के आदेशानुसार उद्धव गोकुल जा पहुँचे। गोकुल

में उनका वही सम्मान हुआ जो कृष्ण के सखा होने के कारण होना चाहिए था। आदर-सम्मान कर चुकने पर गोपियाँ अपने प्यारे कृष्ण का संदेशा पूछने लगीं। संदेशा कह चुकने पर उद्धव ने ज्ञानोपदेश देना आरम्भ कर दिया। गोपियों को उद्धव की यह रूखी ज्ञान-चर्चा कुछ भी न रुची। वे बेमन से उद्धव की बातें सुन ही रही थीं कि इतने में ही एक भ्रमर उड़ता हुआ उन लोगों के बीच में आ पहुँचा। अब क्या था, गोपियों ने भ्रमर को संबोधित करके उद्धव को भला-बुरा कहना आरम्भ कर दिया। ताने पर ताने देने शुरू कर दिए। वे उद्धव के योग और निर्गुण उपासना का खंडन और अपने प्रेम और भक्ति का मंडन करने लगीं।

ये सब बातें सुनाई तो गईं उद्धव को, किन्तु कही गईं 'भ्रमर' से, अतएव इस प्रसंग का नाम 'भ्रमर-गीत' पड़ गया।

हिन्दी-काव्य के अन्य भ्रमर-गीत

सबसे पहिले हमें 'भ्रमर-गीत की कथा श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध के ४६वें व ४७वें अध्याय में संस्कृत श्लोकों में लिखी हुई मिलती है। इसी कथा के आधार पर सूरदास जी ने हिन्दी भाषा में सर्व प्रथम 'भ्रमर-गीत' की रचना की। सूर के बाद नंददास, हितवृंदावनदास, प्रागनि कवि, रीवाँ नरेश रघुराज सिंह, कविरत्न सत्यनारायण आदि सज्जनों ने भी उसी विषय पर लेखन

प्रणाली तथा कथा में कुछ कुछ परिवर्तन करके, भ्रमर-गीत लिखे हैं।

अभी हाल ही में स्व० श्री जगन्नाथदास जी 'रत्नाकर' ने उद्धव-शतक' नामक काव्य की रचना की थी। इस काव्य का भी विषय वही है, जो भ्रमर-गीतों का। अतएव, इसकी गणना भी भ्रमर-गीत के विभाग में ही होनी चाहिए।

इन सब भ्रमर-गीतों में नंददास कृत भ्रमर-गीत का हिन्दी साहित्य में एक अलग ही स्थान है। इसमें बड़े ही सरल तथा सरस शब्दों में उद्धव और गोपियों का संवाद कराया गया है। संवाद में ज्ञान और भक्ति की ही चर्चा विशेषरूप से की गई है, और अंत में शास्त्रीय-पद्धति तथा हार्दिक अनुभूति के आधार पर सगुणोपासना का महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। नंददास जी पुष्टि-मार्ग के मानने वाले थे, अतएव उसकी उपासना से प्रेरित होकर उन्होंने प्रेम और भक्ति का ही समर्थन किया है।

नंददास जी के भ्रमर-गीत का क्रम

प्रायः सभी भ्रमर-गीतों में उद्धव-गोपी संवाद वर्णित है। नंददास जी ने भी अपने भ्रमर-गीत में उद्धव से गोपियों की बातचीत कराई है। किन्तु नंददास जी के वार्तालाप में एक विशेषता है। विशेषता यह है कि नंददास जी ने जो बातचीत कराई है, वह एक क्रमबद्ध रूप में है। एक भाव दूसरे भाव से ऐसे जुड़े हुए हैं कि कहीं भी वे विशृंखल नहीं मालूम देते;

पाठक गण बड़ी ही सुगमता से एक भाव से दूसरे भाव पर सर-कते हुए अंतिम परिणाम तक पहुँच जाते हैं। भ्रमर-गीत के अन्य रचयिताओं में यह बात नहीं है। उनकी रचना तो फुटकर छंदों की एक संग्रह मात्र सी प्रतीत होती है। कोई भाव कहीं आगया है तो कोई भाव कहीं। भावों की कोई क्रमवद्ध श्रृंखला दृष्टिगोचर नहीं होती। नंददास जी में यह बात नहीं है। उनकी रचना का क्रमवद्ध वर्णन संक्षेप में नीचे देखिए—

उद्धव जब गोकुल आते हैं तब वह पहिले उन गोपियों के चरित्र की प्रशंसा करते हैं, जिनसे वह बातचीत करने आए हैं। वह कहते हैं—

ऊधव को उपदेश सुनो ब्रजनागरी,
रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी।
प्रेम धुजा रसरूपिनी उपजावनि सुख पुंज,
सुन्दर स्याम बिलासिनी नव बृंदावन कुंज।
सुनो ब्रजनागरी।

प्रशंसा कर चुकने पर वह अपने गोकुल आने का कारण गोपियों पर व्यक्त करते हैं—

कहन स्याम संदेस एक मैं तुमपै आयौ।

नयनाभिराम स्याम का नाम सुनकर गोपियाँ प्रेमावेश के कारण विह्वल हो उठती हैं—

सुनत स्याम को नाम ग्राम गृह की सुधि भूली,
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली।

पुलकि रोम सब अँग भये भरि आये जल नैन,
कंठ घुटे गद्गद् गिरा बोले जात न बैन।
व्यवस्था प्रेम की।

चित्त स्थिर होने पर गोपियाँ उद्धव का वैसा ही सत्कार करती हैं जैसा कि गृहस्थ लोग अपने घर में आए हुए अतिथि का करते हैं। सत्कार कर चुकने पर वह उद्धव से अपने प्रियतम का संदेशा पूछती हैं—

अर्घासन बैठारि बहुरि परिकरमा दीन्ही,
स्याम सखा निज जानि बहुरि सेवा बहु कीन्ही।
बूझत सुधि नँदलाल की बिहँसत मुख ब्रजबाल,
नीके हैं बलबीर जू बोलति बचन रसाल।
सखा सुन स्याम के।

गोपियों के प्रश्न का उत्तर देते हुए उद्धव कहते हैं—

कुसल स्याम अरु राम कुसल संगी सब उनके,
जदुकुल सिगरे कुसल परम आनंद सबन के।

फिर कहते हैं—

मिलिहैं थोरे दिवस मैं जनि जिय होहु अधीर।
सुनो ब्रजनागरी।

कृष्ण का संदेशा सुनकर गोपियाँ मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं। कृष्ण का नाम सुनकर तो गोपियों के मुख से वचन ही नहीं निकलते थे और अब उनका संदेशा सुनकर तो वह बिलकुल बेसुध सी हो जाती हैं—

सुनि मोहन संदेस रूप सुमिरन ह्वै आयो,
पुलकित आनन कमल अंग आवेस जनायो।
विह्वल ह्वै धरनी परीं ब्रजबनिता मुरझाय,
दे जल छींट प्रबोधहीं ऊधव बैन सुनाय।
सुनो ब्रजनागरी।

प्रेमी की दशा का इससे सुन्दर वर्णन क्या हो सकता है? भ्रमर-गीत के लिखनेवालों में से सूर के अतिरिक्त कोई भी प्रेम का ऐसा सुन्दर चित्र खींचने में समर्थ नहीं हो सका है।

इस प्रकार गोपियों के प्रेम का दिग्दर्शन करा कर नंददास जी उद्धव द्वारा गोपियों को योग की शिक्षा दिलवाते हैं। उद्धव गोपियों से कहते हैं—

वै तुमतें नहिं दूरि ग्यान की आँखिन देखौ,
अखिल बिस्व भरपूरि रूप सब उनहिं बिसेखौ।

उद्धव के इस उपदेश को सुनकर गोपियाँ कहती हैं—

कौन ब्रह्म को जोति ग्यान कासौं कहो ऊधो,
हमरे सुन्दर स्याम प्रेम को मारग सूधो।

इस उत्तर पर भी जब उद्धव नहीं मानते और योगाभ्यास की शिक्षा देते ही चले जाते हैं, तब गोपियाँ झुँझला कर कहती हैं—

ताहि बतावहु जोग जोग ऊधो जेहि भावै,
प्रेम सहित हम पास नंद नंदन गुन गावै।

नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि,
प्रेम पियूषै छाँड़ि कै कौन समेटै धूरि।
सखा सुन स्याम के।

इस प्रकार जब उद्धव और गोपियों के बीच बातचीत हो रही थी, तब एकाएक प्रेम के वशीभूत होकर गोपियाँ अपने सम्मुख कृष्ण की साक्षात् मूर्ति का दर्शन करने लगीं। जिसके विषय में सम्वाद चल रहा था उसके प्रेम में अत्यन्त आसक्त होने के कारण भावविभोर हो उसकी आकृति निकट देखने में कितने स्वाभाविक स्त्री-हृदय का चित्र है! कृष्ण के दर्शन की बात नंददास जी के मस्तिष्क की ही उपज है। अन्य भ्रमर-गीतों में हम यह बात नहीं पाते।

अब देखिए नंददास जी किस प्रकार गोपियों को कृष्ण का दर्शन कराते हैं।

ऐसे में नन्दलाल रूप नैनन के आगे,
आय गये छवि छाय बने पियरे उर बागे।

कृष्ण को देखकर गोपियाँ, जो उनके विरह में अत्यन्त व्याकुल थीं, इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं—

अहो नाथ रमानाथ और जदुनाथ गुसाईं,
दुख जलनिधि हम बूड़हीं कर अवलंबन देहु।
निठुर ह्वै कहँ रहे।

हम परबस आधीन हैं तातें बोलत दीन,
जल बिन कहो कैसे जियैं गहिरे जल की मीन।
बिचारहु रावरे।

प्रार्थना कर चुकने पर स्त्री-स्वभाव के अनुकूल गोपियाँ अपने निष्ठुर प्रियतम को उपालम्भ देना आरम्भ कर देती हैं। वे आपस में कहती हैं कि इन्होंने केवल हम लोगों को ही कष्ट नहीं पहुँचाया है, वरन् पहिले भी इन्होंने बहुत सी स्त्रियों को पीड़ा पहुँचाई है। वे कहती हैं—

इनके निर्दय रूप में नाहिन कछू विचित्र,
पय पीवत ही पूतना मारी बाल चरित्र।
मित्र ये कौन के।

जग्य करावन जातहे बिस्वामित्र समीप,
मग में मारी ताड़का रघुबंशी कुलदीप।
बालही रीति यह।

सीता जू के कहे तें सूपनखा पै कोपि,
छेदि अंग बिरूप कै लोगन लज्जा लोपि।
कहा ताकी कथा।

प्यारे कृष्ण की निष्ठुरता का वर्णन करती करती गोपियाँ प्रेम में मग्न हो जाती हैं—

यहि बिधि होइ आवेस परम प्रेमहिं अनुरागी,
और रूप पिय चरित तहाँ ते देखन लागी।
रँगीली प्रेम की।

निष्ठुर कृष्ण के प्रति भी गोपियों के ऐसे सच्चे प्रेम को देखकर उद्धव नत मस्तक हो जाते हैं—

देखत इनको प्रेम नेम ऊधव को भाज्यौ,
तिमिर भाव आवेस बहुत अपने मन लाज्यौ।
मन में कह रज पाय कै लै माथे निज धारि,
हौं तो कृतकृत ह्वै रह्यौं त्रिभुवन आनन्द बारि।
बन्दना जोग ये।

जब यह सब घटनाएँ घट रही थीं, उसी समय एक भ्रमर उड़ता हुआ उन लोगों के बीच में आ पहुँचा। बस, भ्रमर को देखकर गोपियाँ, जो उद्धव की रूखी ज्ञान-चर्चा से चिढ़ी हुई बैठी थीं, उसे सम्बोधित कर उद्धव को इस प्रकार फटकारने लगीं।

जनि परसौ मम पाँव रे तुम मानत हम चोर,
तुमही सों कपटी हुते मोहन नन्दकिसोर।
यहाँ ते दूरि हो।

मधुबन सुधि बिसराय कै आये गोकुल माहिं,
इहाँ सबै प्रेमी बसैं तुमरो गाहक नाहिं।
पधारौ रावरे।

इस प्रकार जब गोपियाँ भ्रमर के बहाने उद्धव को फटकार रही थीं, तब एकाएक उन्हें कृष्ण की याद आगई और वे विलाप करने लगीं—

ता पाछे इकबार ही रोईं सकल ब्रजनारि,

हा करुनामय नाथ हा केसव कृष्ण मुरारि।

फाटि हियरो चल्यो।

गोपियों के इस पवित्र प्रेम का उद्धव पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा और वह कहने लगे—

अब रहिहौं ब्रजभूमि की ह्वै पग मारग धूरि,

बिचरत पद मोपै परै सब सुख जीवन मूरि।

मुनिनहूँ दुर्लभै।

उद्धव गोपियों के प्रेम से ऐसे प्रभावित हो गए कि मथुरा पहुँचते ही उन्होंने क्रोधभरे शब्दों में कृष्ण से कहा—

करुनामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूँठी।

मैं जान्यौ ब्रज जायकै तुम्हरो निर्दय रूप,

जे तुमकों अवलम्बहीं तिनकों मेलौ कूप।

कौन यह धर्म है।

उद्धव की बातें सुनकर कृष्ण ने अपना सच्चा स्वरूप दिखला कर उन्हें इस प्रकार शान्त किया—

मोमैं उनमैं अन्तरो एकौ छिन भरि नाहिं,

ज्यौं देखौ मो माहिं वै त्यौं मैं उनहीं माहिं।

तरङ्गनि बारि ज्यौं।

गोपी रूप दिखाय तबै मोहन बनवारी,

ऊधव भ्रमहिं निवारि डारि मुख मोह की जारी।

अपनो रूप दिखाय कै लीन्हों बहुरि दुराय।

अस्तु, नंददास कृत भ्रमर-गीत को हम बहुत ही गठे हुए रूप में पाते हैं।

अन्य भ्रमर-गीतों का क्रम

अन्य भ्रमर-गीतों में, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, हम यह क्रम नहीं पाते, जो नंददास जी में है। उदारहणार्थ महाकवि सूरदास जी के तीसरे[1] भ्रमर-गीत के कुछ पदों का क्रम देखिए—

पहिला पद—

हरिरथ रतन जरेउ कि अनूप दिखावै।
जिहि मग कृष्ण गये उतही ते आवै॥
उतही ते आवै सखिन बुलावै देखो मनहिं बिचारी।
मनिमुकुट किरनितन पीतबसन कोउ गोबिंद की अनुहारी॥
चलो चलो धोरी सुनिये कछु बातें।
कहहु कहहु ऊधो हरि की कुशलातें॥
कहहु कहहु तो ऊधो तुम क्यों ब्रज आये।
तब हँसि बचन कहे हम कृष्ण पठाये॥
कृष्ण पठाये तो ब्रज आये कहत मनोहर बानी।
तुम सुनहु संदेसो तजहु अंदेसो तुम हौ सकल सयानी॥

---

१ सूरदास जी ने तीन भ्रमर गीत लिखे हैं। पहिले भ्रमर-गीत में कृष्ण ने उद्धव द्वारा गोकुल में जो सन्देशा भेजा था, उसका उल्लेख है; दूसरे में कुब्जा के सन्देशे का वर्णन है और तीसरे में गोकुल पहुँचने पर उद्धव और गोपियों के बीच जो सम्वाद हुआ है, उसका उल्लेख है।

गोपसखा चित जिनि राखो अबिगत है अबिनासी।
मोहन माया पीर न दाया सब घट सदा निवासी॥
ऊधो जिनि कहो हरि की प्रभुताई।
सुनि जिय अनक बढ़े रिस रहेउ न जाई।
ऊधो तुम कमलनयन सो कहियो जाई।
एकबार कैसेहूँ ब्रज देहु दिखाई॥ इत्यादि

दूसरा पद—

उमँगि ब्रज देखन को सब धाये।
एकहि एक परस्पर बूझत जनु मोहन दूलह आये॥
सोई ध्वजा पताका सोई रथ चढ़ि दिवस सिधाये।
श्रुतिकुण्डल अरु पीत बसन स्रक वैसेइ साज बनाये॥
जाय निकट पहिचान्यों ऊधो नयन जलज जल छाये।
सूरजस्याम मिटी प्रत्यासा नूतन विरह जनाये॥

सातवाँ पद—

कोउ मधुबन ते है आयो।
सखी सुमतु सब सुनों सुचितु दे हितकरि स्याम पठायो।
इत्यादि—

उपर्युक्त तीनों पदों में हम वह चढ़ाव-उतार नहीं पाते, जो नंददास जी में है। जो बात पहिले पद में है, वही दूसरे में है और वही सातवें में; एक ही बात का बार बार वर्णन होने से क्रम में काफ़ी शिथिलता आगई है। साथ ही जिस बात का वर्णन नंददास जी ने ७५ छंदों में किया है, उसका वर्णन

सूरदास जी ने एक ही पद में कर दिया है। इस कारण सूर के 'बाद वाले पदों' को पढ़ने में वह आनन्द नहीं आता, जो नंददास जी की रचना में आता है।

अब रघुराज सिंह कृत भ्रमर-गीत के वर्णन को देखें—

आरम्भ—

रे रे मधुकर ब्रज में तू कैसे कै चलि आयो।
जानि परत वह कपटी कारो कान्हर तोहिं पठायो॥

× × × × × ×

मधुप जाहु मधुपुरी लौटि तुम इत नहिं काम तुम्हारो।
कहियो उन्है सँदेसो पेसो छुश्रो न चरण हमारो॥

× × × × × ×

छोड़हु छोड़हु चरण हमारो धरहु न पग धरि शीशा।
माधव सखा मधुप तुम सांचे तिहरो छल सब दीशा॥
तुमको सिखै रीति छल केरी मोहन इतै पठायो।
मीठे मीठे बचन बोलि बहु आय संदेश सुनायो॥
तैसहि तुमहु चली पूरे हौ जैसो नाथ तिहारो।
तुम्हरे वयनन में नहिं नेकहु परत विस्वास हमारो॥
जाहु करौ बावरी तियन सों अन्तै यह चतुराई।
हमरे नेरे कपट रीति यह छपिहै नहीं छिपाई॥

अंत—

कहहु कहहु मथुरा की खबरैं जहँ है नंददुलारो।
सबल बसत पिय कुशल सकल बिधि गुरु गृह ते पगु धारो॥

कबहूँ नंदयशोमति को घर सुरति करत बनमाली।
कबहुँ सखन की सुरति करत हरि रहे लाल अति ख्याली॥
जिन गौवन को रहे चरावत बंशी वट की छाहीं।
कबहूँ सुरति करत मनमोहन तिनकी निज मन माहीं॥
भोजन करि कै मातु पिता गृह पिय छप्पन पकवाना।
अब गोपिन को मथो तुरत को माखन स्वाद भुलाना॥
यमुनाकूल निकुंजन में जो खेल्यो खुलि खुलि ख्यालै।
ताकी सुरति कबहुँ आवति है निर्मोही नँदलालै॥

उपर्युक्त छंदों के क्रम में भी हम शिथिलता पाते हैं। कारण कि कहाँ तो आरम्भ में गोपियाँ मधुकर को फटकारती हुई कहती हैं कि ' तुम यहाँ से चले जाओ, तुम्हारा यहाँ कोई काम नहीं है', और कहाँ अंत में वही गोपियाँ मधुकर का स्वागत करती हुई कृष्ण का संदेशा पूछती हैं। कैसी उलटी पुलटी बातें हैं।

नंददास कृत भ्रमर-गीत की अन्य भ्रमर-गीतों से तुलना

उद्धव और गोपियों के बीच ज्ञान तथा भक्ति सम्बन्धी जो बातचीत हुई है, उसका जैसा मनोहर वर्णन नंददास जी कर सके हैं वैसा हम अन्य कवियों में नहीं पाते। नंददास जी के सम्वाद में तर्क-वितर्क के साथ साथ एक ऐसा काव्यानंद भरा हुआ है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। उदाहरणार्थ नंददास जी के तथा सूर, प्रागनि आदि कवियों के सम्वाद सम्बन्धी कुछ छंदों को देखिए।

नंददास के उद्धव गोपियों को ज्ञान सम्बन्धी शिक्षा देते हुए कहते हैं—

वे तुमतें नहिं दूरि ग्यान की आँखिन देखौ,
अखिल बिस्व भरपूरि रूप सब उनहिं बिसेखौ।

उद्धव के उपदेश को सुनकर गोपियाँ सहज भाव से उत्तर देती हैं—

कौन ब्रह्म को जोति ग्यान कासौं कहो ऊधो,
हमरे सुन्दर स्याम प्रेम को मारग सूधो।

कितने सरल भाव हैं! जो हृदय कृष्ण के प्रेम में पग चुका है, भला उसमें ब्रह्म-ध्यान को अनुरक्ति कैसे आ सकती है? कृष्ण ही उनके जीवन के प्रिय सहचर हैं, अतः उनकी सगुण मूर्ति की आराधना के सामने निर्गुण ब्रह्म की आराधना किस प्रकार संभव हो सकती है? 'जाके रूप रेख कछु नाहीं'—भला वह देखा कैसे जा सकता है? फिर देखना भी इन आँखों से नहीं बल्कि आँखें मूँदकर और त्रिकुटी पर ध्यान स्थित कर! कितनी असंभव बात है! उपदेश तो वही अच्छा है जो लौकिक व्यवहार से परे न हो, वरन् सर्वसाधारण के लिए सरल और युक्तिसंगत हो।

इस पर भी उद्धव कहते हैं—

.........रूप निर्गुन है उनको।
हाथ न पाँय न नासिका नैन बैन नहिं कान,
अच्युत जोति प्रकासहीं सकल बिस्व को प्रान।

इस पर गोपियाँ प्रेमभरे शब्दों में कहती हैं कि भला यह कैसे हो सकता है कि हमारे कृष्ण के हाथ, पैर, आँख आदि न हों—

जो मुख नाहिन हतो कहो किन माखन खायो,
पायन बिन गोसंग कहो बन बन को धायो।
आँखिन में अंजन दयो गोबर्द्धन लयो हाथ,
नन्द जसोदा पूत हैं कुँवर कान्ह ब्रजनाथ।

गोपियों का यह उत्तर कितना हृदयस्पर्शी और मार्मिक है। सूर ने यही प्रसंग इस प्रकार कहा है—

उद्धव गोपियों को समझा रहे हैं—

यह उपदेस कहेउ है माधो।
करि बिचार जिय साधन साधो॥
इला पिंगला सुष्मन नारी।
सून्य सहज में बसहिं मुरारी॥
ब्रह्म भाव करि सगुनहि देखो।
अलख बिना कछु और न पेखो॥
कूंची तार एक मन लाई।
नैन मूंद अंतर्गत ध्याई॥
हृदय कमल महँ जोति प्रकासी।
सोई अंतर्यामी अबिनासी॥
यहै उपाइ बिरह जल तरिहो।
जोग पंथ क्रम क्रम अनुसरिहो॥

इतना सुनते ही गोपियाँ अपना मुख फेर लेती हैं और क्रुद्ध होकर कहती हैं—

> रे मधुकर रस लंपट बाई।
> ऐसे बचन न कहे कन्हाई॥
> श्री बृन्दाबन भवन बिराजै।
> नटवर भेस सदा हरि साजै॥
> रास बिलास भले माने मन।
> बिच गोपी बिच कान्ह स्याम घन।

और भी—

> रे अलि कहा सिखावन आयो।
> ये तो नैन रूप रस राचे कहेउ न करत परायो॥
> जोग जुगुति हम कछू न जानहिं ना कछु ब्रह्मज्ञानों।
> नवलकिसोर मोहन मृदु मूरति तासों मन अरुझानों॥

उपर्युक्त वर्णन में हम वह तर्क-वितर्क तथा सरसता नहीं पाते, जो नंददास में है।

इस सम्बन्ध में प्रागनि कवि का भी वर्णन पढ़ने योग्य है। उद्धव गोपियों से कहते हैं—

> वे निहकाम सकाम भजी तुम मृगजल के अनुमान।
> बिना भूमि जल पाहन ऊपर चहत जमायो धान।
> करहु प्रधान सतोगुन सुंदर धरहु जोति कैा ध्यान।
> प्रागनि प्रभु तौ भले पाइहौ जो सीखौ यह ग्यान।

इस पर गोपियाँ उत्तर देती हैं—

ऊधव ब्रज की गैल नियारी।
बेद पुरान उलंघन कीन्हेउ श्री सर्बस गिरिधारी।
अमरादिक कहँ दुर्लभ ऊधव जानत नाहिन कोई।
प्रागनि ब्रजसुख सोई जानै रासरसिक जो होई।

इतने पर भी जब उद्धव नहीं मानते तब गोपियाँ उन्हें फट-कारती हुई कहती हैं—

ताते बिलगु कहा हम मानहिं।
विष के जीव कहा जानहिगे अमृत के अनुपानहिं।
लोचनहीन रूप कह देखहि बहिरो कहा सुनहिगो गानहिं।
अंतरगत अभिलाष कहन की बचनहीन कह मूक बखानहिं।
रसलंपट कह बिथा जानिहे बिन उर बिंधे बिरह के बानहिं।
प्रागनि जहँ को रसलंपट है चतुर आपने कामहिं।

प्रागनि कवि का उपर्युक्त वर्णन भी उतना मर्मस्पर्शी नहीं ज्ञात होता, जितना नंददास का। यहाँ नंददास का वह चित्र नहीं है जिसमें उद्धव और गोपियाँ मूर्तिमान होकर हमारे सामने खड़े हो जाते हैं।

नंददास ने गोपियों द्वारा कृष्ण के पूर्व अवतारों की निष्ठुरता पर कुछ व्यंग्य-बाण छुड़वाए हैं। रघुराज सिंह ने भी इसी प्रकार के व्यंग्यों का प्रयोग किया है, किन्तु उनके व्यंग्य इतने तीव्र तथा मर्म-भेदी नहीं होसके हैं, जितने नंददास के। उदाहरणार्थ नीचे

दिए हुए छंदों को पढ़िए और मिलान कीजिए कि किस कवि का वर्णन श्रेष्ठ है।

नंददास जी की गोपियाँ कृष्ण को उपालम्भ देती हुई आपस में कहती हैं—

बलि राजा पै गये भूमि माँगन बनमाली।
माँगत बामन रूप धरि नापत करी कुदाँव,
सत्य धर्म सब छाँड़ि कै धर्यौ पीठ पै पाँव।
लोभ की नाव ये।

इसी प्रसंग को रघुराज सिंह ने इस प्रकार कहा है—

वामन आँगुर को वपु रचि कै असुरनाथ मख आयो।
ताके कर ते सकल भाँति ते सादर पूजन पायो॥
तीनि चरण महि माँगि प्रथम पुनि अपनो रूप बढ़ायो।
दोई चरण नापि त्रिभुवन को तीजो घटो सुनायो॥
ता बदले बलि पीठि नापि कै पुनि तेहि बन्धन कीन्ह्यो।
यहि विधि छलकरि असुरराज हरि सुरराजहि दीन्ह्यो॥
ऐसे चरित अनेकन इनके कहँ लौ बदन बखानै।
ताते करै न कारेन को पथ कहो जो हमरो मानै॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी-साहित्य में अन्य भ्रमर-गीतों की अपेक्षा नंददास के भ्रमर-गीत में एक अनूठापन है; उसपर कवि की अपनी छाप है। यही कारण है कि अन्य भ्रमर-गीतों को वह सम्मान नहीं प्राप्त होसका है जो नंददास जी के भ्रमर-गीतों को मिला है। नंददास जी की यह अमर कृति है।

भ्रमर-गीत और उसकी विशेषताएँ

'भ्रमर-गीत' एक विरह-काव्य है। और भी बहुतेरे कवियों ने वियोग श्रृंगार पर रचनाएँ की हैं, किन्तु जैसा सुन्दर काव्य यह बन पड़ा है, वैसा बहुत कम देखने में आता है। भाव, भाषा, अलंकार, छंद आदि सभी दृष्टियों से यह एक उत्कृष्ट काव्य ठहरता है।

पहिले भाव-व्यंजना को ही लीजिए—

भाव-व्यंजना

भारतीय-साहित्य-शास्त्र में रति, शोक, उत्साह, क्रोध आदि ६ स्थायी भाव माने गए हैं। कवि की दृष्टि जितनी ही व्यापक अथवा तीव्र होती है, वह उतने ही अच्छे ढंग से इन भावों की व्यंजना करता है। किन प्रसंगों में कैसे भावों की कितनी तीव्रता दिखानी चाहिए, इसका उसे काफ़ी ध्यान रखना पड़ता है। नंददास जी की दृष्टि तीव्र अवश्य थी किंतु मानवी प्रकृति को भिन्न भिन्न परिस्थितियों में उन्होंने नहीं चित्रित किया है! फिर भी कहीं कहीं पर उन्होंने आंतरिक भावों को बड़े ही मर्मस्पर्शी शब्दों में व्यक्त किया है। उदाहरण के लिए विरहावस्था के समय का ही वर्णन ले लीजिए। प्रिय के वियोग में प्रेमी की जो दशा होती है, उसका बहुत ही अनूठा चित्र नंददास जी ने अपने 'भ्रमर-गीत' में पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है।

जैसा कि सभी रसिक जन जानते होंगे कि प्रेमी अपने प्रियतम की याद में खाना-पीना तक भूल जाता है। उसे किसी भी वस्तु

की अभिलाषा नहीं रहती; उसे यदि किसी वस्तु की अभिलाषा रहती है तो वह केवल प्रिय-दर्शन की। ठीक यही दशा कृष्ण के वियोग में गोपियों की है। कृष्ण के वियोग में उन्हें संसार की कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगती। उन्हें तो केवल कृष्ण के दर्शन की अभिलाषा है। वे उद्धव से कहती हैं—

हमकों बिन वा रूप के और न कछू सुहाय।

सखा सुन स्याम के।

प्रेमी के बहुत फटफटाने पर भी जब प्रियतम से भेंट नहीं होती, तब प्रेमी का हृदय विदीर्ण होने लगता है और वह अपने प्रियतम की याद में रोने लगता है। कृष्ण के वियोग में गोपियों की भी यही गति है। कृष्ण के न मिलने पर वे उनका स्मरण कर रोने लग जाती हैं—

ता पाछे इकबारही रोईं सकल ब्रजनारि,
हा करुनामय नाथ हो केसव कृष्ण मुरारि।

फाटि हियरो चल्यो।

यहाँ नंददास जी ने गोपियों की अत्यंत कारुणिक मूर्ति उपस्थित की है। उनके इस करुण क्रन्दन की विशेषता सबके एक साथ मिलकर रोने में है। इस मार्मिक रुदन में समस्त व्रज के टूटे हुए हृदय का सच्चा चित्र है। यही नहीं, ऐसा ज्ञात होता है कि गोपियाँ एक बारही—हाँ, केवल एक बार और अंतिम बार—अपनी सारी व्यथा उँड़ेल देना चाहती हैं जिससे उनके जी का अरमान निकल जाय। बस, यही उनकी सान्त्वना का रूप है।

गोपियों के इस उजड़े जीवन से टेनीसन (Tennyson) की निम्न पंक्ति का कितना साम्य है—Wild and wandering cry, confusions of a wasted Youth. इस भाव में मनुष्य जाति के करुण भावों की अन्तर्तम व्यंजना है।

भ्रमर-गीत की भाषा अधिकतर शुद्ध ब्रजभाषा है। संस्कृत भाषा के शब्द भी कहीं कहीं देखने में आते हैं। संस्कृत को छोड़कर अन्य भाषाओं के शब्दों का बहुत ही कम उपयोग हुआ है।

भाषा में साधारण माधुर्य्य के साथ प्रसाद गुण का विशेष चमत्कार ज्ञात होता है। पंक्तियों में न तो संयुक्ताक्षर हैं और न लम्बे-चौड़े समास। शब्दों के पढ़ने मात्र से ही उनका अर्थ स्पष्ट हो जाता है और चित्त प्रसन्न हो उठता है। यथा—

कोउ कहैं अहो स्याम चहत मारन जो ऐसे,
गिरि गोबर्द्धन धारि करी रच्छा तुम कैसे।
ब्याल अनल विष ज्वाल तें राखि लये सब ठौर,
अब बिरहानल दहत हौ हँसि हँसि नन्द किसोर।
चोर चित लै गये।

नंददास जी ने 'भ्रमर गीत' में मुहावरों का भी अच्छा प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण ये हैं—

(१) जबहिं लौं नहिं लखौ तबहिं लौं बाँधी मुठी।

(२) सकल कुल तरि गयो।

(३) फाटि हियरो चल्यो।

(४) मरत कह बोल को।

(५) इन छल करि दुलही हरी छुधित ग्राम मुख काढ़ि। इत्यादि—

भ्रमर-गीत में मुख्य अलंकार व्यापक दृष्टि से रूपक है, **अलंकार** किन्तु कहीं कहीं अन्य अलंकार भी मिल जाते हैं। नंददास जी ने केशव की भाँति अलंकारों के फेर में पड़कर कहीं भी अपने भावों को नष्ट नहीं किया है। उन्होंने अलंकार की अपेक्षा भाव-व्यंजना की ओर विशेष ध्यान दिया है और उस वर्णन में अलंकार स्वतः आगए हैं। भ्रमर-गीत में आए हुए 'रूपक' के कुछ उदाहरण देखिए—

(१) प्रेम अमृत मुख तें स्रवत अंबुज नैन चुवात।

(२) दुख जलनिधि हम बूड़हीं कर अवलंबन देहु।

(३) ता पाछे या मधुपहू लायो जोग भुवंग।

भ्रमर-गीत की रचना मिश्रित छंदों में हुई है। पहिले छंद में त्रिलोकी[1] और दोहे[2] का सम्मिश्रण है और अंत में

---

१ मात्रिक-सम-साधारण छंद है। इसमें २१ मात्राएँ होती हैं; अन्त में लघु गुरु होते हैं।

(त्रिलोकी छंद प्लवङ्गम और चान्द्रायण छंदों के मेल से बना हुआ होता है। प्लवङ्गम और चान्द्रायण दोनों में २१, २१ मात्राएँ होती हैं।)

२ मात्रिक-अर्द्धसम छंद है। इसके पहिले और तीसरे चरण में

छंद दश मात्राओं की टेक है। शेष छंद में रोले[1] के दो चरणों के पीछे एक दोहा है और अन्त में दश मात्राओं की टेक है। टेक लगाकर नंददास जी ने पूरे छंद को एक नवीन रूप दे दिया है। यह भी उनकी मौलिकता का एक अच्छा उदाहरण है।

रोला लिखने में नंददास जी को काफ़ी सफलता प्राप्त हुई है। जैसे छप्पय लिखने में नाभादास, कुण्डलिया लिखने में गिरिधर दास और दोहा लिखने में बिहारी लाल ने ख्याति पाई है, वैसे ही रोला लिखने में नंददास जी की अपनी एक अलग छाप है।

इस प्रकार भाव, भाषा अलंकार, छंद आदि सभी दृष्टियों से हम 'भ्रमर-गीत' को एक अनूठा विरह-काव्य पाते हैं।

---

१३ और दूसरे और चौथे चरण में ११ मात्राएँ होती हैं। पहिले और तीसरे चरण के आदि में जगण न होना चाहिए। अन्त में लघु होता है।

१ मात्रिक-सम-साधारण छंद है। इसमें २४ मात्राएँ होती हैं; ११ और १३ पर यति होती है। कुछ आचार्यों का मत है कि यति ११ मात्राओं से अधिक पर भी हो सकती है।

किसी किसी कवि का मत है कि रोला छंद के प्रत्येक चरण के अन्त में दो गुरु अवश्य होने चाहिये, किन्तु यह सर्वसम्मत नहीं है।

जिस रोला के चारों पदों में ११ इवीं मात्रा लघु होती है, उसे 'काव्य' छंद कहते हैं।

भ्रमर-गीत और उसकी अधारभूत प्रतियाँ

इस समय हिन्दी-साहित्य में नंददास कृत भ्रमर-गीत का कोई भी अच्छा संस्करण उपलब्ध नहीं है। प्रायः सभी संस्करणों में पाठ सम्बन्धी अशुद्धियों की भरमार है। ऐसी दशा में 'भ्रमर-गीत' के एक अच्छे संस्करण की बहुत ही आवश्यकता थी। आशा तो यह की जाती थी कि ना. प्र. सभा, काशी अथवा ब्रजभाषा का कोई प्रगाढ़ पंडित इस ग्रंथ का एक शुद्ध संस्करण निकाल कर विद्यार्थी-वर्ग तथा हिन्दी-जनता के सामने प्रस्तुत करेगा। किन्तु इस दिशा में कोई भी प्रयत्न होता हुआ न देखकर यह एक नवीन संस्करण प्रेमी पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया जारहा है।

इस संस्करण के संपादन करने में निम्नलिखित ६ प्रतियों से सहायता ली गई है[१]। प्रतियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

क. प्रति—काव्य-कुसुमांजलि कार्यालय, मेरठ से सन् १९१८ ई. में प्रकाशित। इस ग्रंथ के संपादक श्री ब्रजमोहन लाल जी, विशारद, हैं।

ख. प्रति—बाबू बालमुकुन्द गुप्त द्वारा संपादित तथा भारत-मित्र प्रेस, कलकते से सन् १९०४ ई. में प्रकाशित।

१—'भ्रमर-गीत' की हस्तलिखित प्रतियों के प्राप्त करने का बहुत कुछ प्रयत्न किया गया, किन्तु वे इस संपादन के लिए प्राप्त न होसकीं। हस्तलिखित प्रतियों का पता ३७वें पृष्ठ के फुटनोट में देखिए—

ग. प्रति—काशी के प्रसिद्ध विद्वान श्री ब्रजरत्न दास द्वारा संपादित तथा साहित्य-सेवा-सदन, काशी से सन् १९२३ ई० में प्रकाशित।

घ. प्रति—श्रीगोवर्द्धनदास लक्ष्मीदास द्वारा 'कल्पतरु-कार्यालय,' बम्बई से सन् १८९० ई० में प्रकाशित।

ङ प्रति—श्री रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' द्वारा संपादित तथा ओंकार प्रेस, प्रयाग से सन् १९२९ ई० में प्रकाशित।

च. प्रति—नवलकिशोर, प्रेस द्वारा प्रकाशित 'सूर सागर' में उद्धृत[1]।

उपर्युक्त प्रतियों में कोई भी अधिक प्राचीन नहीं है। सबसे पुरानी 'च' प्रति को छपे हुए केवल ५० वर्ष हुए हैं। 'घ' प्रति भी केवल ४२ वर्ष पहिले की छपी हुई है।

इनमें से 'ग,' 'घ' और 'च' प्रतियों के पाठ अधिक शुद्ध ज्ञात हुए हैं। अतः मूल पाठ निश्चित करते समय इन्हीं प्रतियों से विशेष सहायता ली गई है।

संपादन सिद्धान्त

शब्दों की एकरूपता के आधार पर ही मूल पाठ निश्चित किया गया है। अर्थात् जो पाठ अधिकांश प्रतियों में एक ही

---

(१) ना. प्र. सभा, काशी तथा (२) स्व. श्री जगन्नाथ दास जी 'रत्नाकर', शिवालाघाट, काशी।

१—देखिये सूरसागर, पाँचवाँ संस्करण, पृ. ९७० से ९७७ तक।

रूप में मिला है, उसे ही मूल पाठ में स्थान दिया गया है। मूल पाठ के अतिरिक्त जो भिन्न पाठ मिले हैं, वे सब फुटनोट में दे दिए गए हैं। जिन सज्जनों को मूल में दिया हुआ पाठ संतोष-जनक प्रतीत न हो, वे फुटनोट में दिए हुए पाठान्तरों से सहायता ले सकते हैं। मूल पाठ निर्धारित करते समय इस बात का भी ध्यान रक्खा गया है कि कोई ऐसा शब्द छंद में न आने पावे जिससे किसी प्रकार की अस्पष्टता अथवा छंदोभंग दोष आजाय। इतने पर भी यदि किसी छंद में कोई अस्पष्ट शब्द आगया है, अथवा मात्राएँ घट बढ़ गई हैं, तो उसका उल्लेख शब्द के आगे प्रश्नवाचक चिन्ह (?) लगाकर कर दिया गया है।

उदाहरण के लिए तेंतीसवें छंद के इस दोहे को देखिए—

ऐसी कछु प्रभुता हुती जानत कोऊ नाहिं,
अबला बुद्धि (?) हम डर गई बली डरैं जग माहिं।

उपर्युक्त दोहे में 'बुद्धि' शब्द के कारण एक मात्रा अधिक हो गई है, अतः उसके आगे प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिया गया है।

जहाँ तक हो सका है समस्त उपलब्ध प्रतियों के आधार पर शुद्ध से शुद्ध मूल पाठ देने का प्रयत्न किया गया है। सम्भव है कि कुछ स्थानों पर इसमें मतभेद हो। कारण कि यह प्रायः असम्भव सा है कि सभी को एक ही पाठ शुद्ध जंचे। इन्हीं सम्भावनाओं के कारण प्रत्येक छंद के नीचे पाठान्तर दे दिए गए हैं। इस संपादन में कहीं भी अपनी ओर से पाठ

शुद्ध करने या स्वरचित पाठ रखने का अनुचित साहस नहीं किया गया है।

अस्तु, यह संस्करण भूमिका, पाठान्तर तथा टिप्पणी सहित पाठकों के सम्मुख उपस्थित है। यदि वे इसे प्रेमपूर्वक अपनावेंगे तो संपादक अपने परिश्रम को सफल समझेगा।

शरद्-पूर्णिमा, संवत् १९८९
२०, रानीमंडी, प्रयाग। } विश्वम्भर नाथ मेहरोत्रा

भँवर[1] गीत

[१]

ऊधव[2] को उपदेस सुनो ब्रजनागरी,
  रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी।
प्रेम धुजा[3] रसरूपिनी उपजावनि सुख पुंज,
  सुन्दर स्याम बिलासिनी नव[4] बृंदाबन कुंज।
    सुनो ब्रजनागरी[5]

[२]

कहन स्याम संदेस एक मैं तुमपै आयौ,
  कहन समै[1] संकेत[2] कहूँ अवसर[3] नहिं पायौ।
सोचत ही मन में रह्यौं कब पाऊँ इक[4] ठाऊँ,
  कहि सँदेस नँदलाल को बहुरि मधुपुरी जाऊँ।
    सुनो ब्रजनागरी॥

पहला छंद—

१ भ्रमर (ग) (ङ); २ ऊधौ (ग) उद्धव (घ) (च); ३ ध्वजा (घ) (च); ४ बन (घ); ५ बंदना करत हौं (घ)।

दूसरा छंद—

१ समय (ङ) (च); २ एकाँत (घ); ३ औसर (घ); ४ अस (घ) यक (च)।

[३]

सुनत स्याम को नाम ग्राम[1] गृह[2] की सुधि भूली,
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली।
पुलकि रोम सब अँग भये भरि आये जल नैन,
कंठ घुटे[3] गदगद गिरा बोले[4] जात न बैन।
व्यवस्था[5] प्रेम की ॥

[४]

अर्घासन बैठारि[1] बहुरि परिकरमा दीन्ही,
स्याम सखा निज जानि बहुरि सेवा बहु कीन्ही[2]
बूझत[3] सुधि नँदलाल की बिहँसत मुख ब्रजबाल,
नीके हैं बलबीर जू बोलति बचन रसाल।
सखा सुन स्याम के ॥

तीसरा छंद—

१ बाम (ग); २ घर (घ); ३ रुके कंठ (घ) घुटो (ङ);
४ बोल्यो (ग); विवस्था (ग)।

चौथा छंद—

१ बैठाय (ग) सिंहासन बैठाय (घ) अर्द्धासन बैठारि (च);
२ बहुत हित सेवा कीनी (ग) पुहुप बहु सेवा कीनी (घ);
३ पूछत (घ)।

[५]

कुसल स्याम अरु राम[1] कुसल संगी सब उनके,
जदुकुल[2] सिगरे[3] कुसल परम आनंद सबन के[4]।
बूझन[5] ब्रज कुसलात को हौं आयौ[6] तुम तीर[7],
मिलिहैं थोरे दिवस मैं जनि जिय होहु अधीर।
सुनो ब्रजनागरी ॥

[६]

सुनि मोहन संदेस रूप सुमिरन ह्वै आयो,
पुलकित आनन कमल अंग आवेस जनायो।
बिह्वल[1] ह्वै धरनी परीं ब्रजबनिता मुरझाय,
दै जल छींट प्रबोधहीं ऊधव[2] बैन[3] सुनाय।
सुनो ब्रजनागरी[4] ॥

पाँचवाँ छंद —

१ राम औ स्याम (घ); २ यदुकुल (क) (ग) (घ) (च); ३ हैं सब (घ); ४ है उनके (क) (ख) (ङ) (च); ५ बूझत (क) (ख) (ङ) पूछन (घ); ६ पठयो (घ); ७ आयों तुम्हरे तीर (घ)।

छठा छंद—

१ बिह्वल (ख) (ग); २ ऊधौ (ग) उद्धव (घ); ३ बात (क) (ख) (ङ) बचन (घ); ४ प्रेमजुत ज्ञानमय (घ)।

[७]

वै तुमतें नहिं दूरि ग्यान[1] की आँखिन देखौ,
अखिल विस्व भरपूरि[2] रूप सब उनहिं[3] बिसेखौ।
लोह दारु पाषान में जल थल महि आकास,
सचर अचर बरतत[4] सबै जोति व्रह्म परकास[5]।
सुनो व्रजनागरी ॥

[८]

कौन ब्रह्म को जोति ग्यान[1] कासौं कहो ऊधो,
हमरे सुंदर स्याम प्रेम को मारग सूधो।
नैन बैन स्रुति[2] नासिका मोहन रूप लखाय[3],
सुधि बुधि सब मुरली हरी प्रेम ठगोरी लाय।
सखा सुन स्याम के ॥

सातवाँ छंद—

१ ज्ञान (क) (ख) (च); २ भरपूर (घ); ३ ब्रह्म सब रूप (क) (ख) (ङ) ब्रह्म सब विस्व (घ); ४ परवत (घ); ५ ज्योतिहि रूप प्रकास (क) (ख) ज्योति ब्रह्म पुर वास (घ) जोतिहि रूप प्रकास (ङ)।

आठवाँ छंद—

१ ज्ञान (क) (ख); २ मुख (घ); ३ दिखाइ (ग) देखाय (घ)।

[९]

यह सब सगुन[1] उपाधि रूप निर्गुन है उनको,
निरबिकार[2] निरलेप[3] लगत नहिं तीनों गुन को।
हाथ न पाँय[4] न नासिका नैन बैन नहिं कान,
अच्युत[5] जोति[6] प्रकासहीं[7] सकल बिस्व को[8] प्रान।
सुनो ब्रजनागरी॥

[१०]

जो मुख नाहिन हतो[1] कहो किन माखन खायो,
पायन बिन गोसंग[2] कहो बन बन को[3] धायो।
आँखिन में अंजन दयो गोबर्द्धन[4] लयो हाथ,
नन्द जसोदा[5] पूत[6] हैं कुँवर कान्ह ब्रजनाथ।
सखा सुन स्याम के॥

नवाँ छंद—

१ सर्गुन सबै (ग) (घ); २ निराकार (ग) (घ); ३ निर्लेप (ग) (घ); ४ पाउँ (घ); ५ अच्युत (क) (ग) (घ); ६ ज्योति (क) (ख); ७ प्रकासिका (ग) प्रकास हैं (घ); ८ अखिल विस्व के (घ)।

दशवाँ छंद—

१ हुतो (ग) (घ) (ङ); २ पाउँ नहीं गो संग (घ); ३ को बन बन (ग) (घ); ४ गोबरधन (ग); ५ यसोदा (क) (ख) (घ); ६ पुत्र (घ)।

[११]

जाहि कहत[1] तुम कान्ह ताहि कोउ पिता न[2] माता,
अखिल अंड ब्रह्मंड बिस्व उनहीं में[3] जाता।
लीला गुन अवतार ह्वै[4] धरि आये तन स्याम,
जोग जुगुति[5] ही पाइये परब्रह्म पुर धाम[6]।
सुनो ब्रजनागरी ॥

[१२]

ताहि बतावहु जोग जोग ऊधो जेहि भावै[1]
प्रेम सहित हम पास नंद नंदन गुन गावैं[2]।
नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि[3],
प्रेम पियूषै[4] छाँड़ि कै कौन समेटै धूरि[5]।
सखा सुन स्याम के ॥

ग्यारहवाँ छंद—

१ कहौ (ग) कहो (घ); २ पितु नहिं (ग); ३ तें (घ); ४ लै (ग); ५ जुगत (क) (ख) जुगुत (ग); ६ पद धाम (ग)।

बारहवाँ छंद—

१ पावौ (ग); २ स्यामसुन्दर गुन गावौ (ग); ३ भरपूर (क) (ख) भरिपूरि (ग); ४ पियूषहि (घ); ५ धूर (क) (ख)।

[१३]

धूरि बुरी जौ होय ईस क्यों सीस चढ़ावै,
धूरि छेत्र[1] में आय कर्म करि हरिपद पावै।
धूरिहि तें यह तन भयो धूरिहि तें ब्रह्मंड,
लोक चतुर्दस धूरि तें सप्तदीप नवखंड।
सुनो ब्रजनागरी॥

[१४]

कर्म धूरि की बात कर्म अधिकारी जानैं,
कर्म धूरि को आनि प्रेम अमृत में सानैं।
तबही लौं सब कर्म है जब लगि[1] हरि उर नाहिं,
कर्मबद्ध[2] सब बिस्व के जीव बिमुख ह्वै जाहिं।
सखा सुन स्याम के॥

[१५]

तुम कर्महि कस निन्दत[1] जासों सद्गति[2] होई,
कर्मरूप तें बली नाहिं त्रिभुवन में कोई।

तेरहवाँ छंद—

१ सेत्र (घ) (च)।

चौदहवाँ छंद—

१ लौं (ग) ; २ कर्म बंध (ग) कर्म बंधु (घ) कर्म बध्य (च)।

पन्द्रहवाँ छंद—

१ निंदौ (ग) निंदो (घ) तुम निन्दत कइ कर्म (च) ; २ सतगति (क) (ख) (ङ) कर्म ते सद्गति (च)।

कर्महि तें उतपत्ति है कर्महि तें है[३] नास,
कर्म किये तें मुक्ति है परब्रह्मपुर बास।
सुनो ब्रजनागरी ॥

[१६]

कर्म पाप अरु पुन्य लोह सोने की बेरी,
पायन बंधन दोउ कोउ मानौ बहुतेरी।
ऊँच कर्म तें स्वर्ग है नीच कर्म तें भोग,
प्रेम बिना सब पचि मरै[१] विषय बासना रोग[२]।
सखा सुन स्याम के ॥

[१७]

कर्म बुरे जो होंय जोग[१] काहे को[२] धारैं,
पद्मासन सब धारि[३] रोक इन्द्रिन को मारैं।
ब्रह्म अगिन जरि सुद्ध ह्वै सिद्धि[४] समाधि लगाय,
लीन होय सायुज्य[५] में जोतिहि जोति समाय।
सुनो ब्रजनागरी ॥

---

३ सब।

सोलहवाँ छंद—

१ मुये (ग) मुए (घ); २ लोग (घ)।

सत्रहवाँ छंद—

१ योग (क) (ख) (च); २ कोउ काहे (ग) कोइ काहे (घ); ३ द्वारि (ग) बन बन आसन सेइ (घ); ४ सुन्य (घ); ५ साजुज्य (ग)।

[१८]

जोगी जोतिहिं[1] भजैं भक्त निज रूपहि[2] जानैं,
प्रेम पियूषै[3] प्रगट स्यामसुन्दर उर आनैं।
निर्गुन गुन जो पाइये लोग कहैं[4] यह नाहिं,
घर आयो नाग न पूजहीं बाँबी पूजन जाहिं।
सखा सुन स्याम के॥

[१९]

जो उनके[1] गुन होंय वेद क्यों नेति बखानैं[2],
निर्गुन[3] सगुन[4] आतमा रचि ऊपर सुख सानैं[5]।
बेद पुराननि खोजि कै पायौ नहिं गुन एक,
गुनहूँ[6] के गुन होहिं जौ कह अकास किहि टेक।
सुनो ब्रजनागरी॥

अठारहवाँ छंद—

१ योगी जोतैं (क) (ख) योगी योगै (च); २ भक्ति निरूपै (क) (ख) भक्ति नीरूपै (छ); ३ पियूषहि (घ); ४ लोक कहै (घ)।

उन्नीसवाँ छंद—

१ हरि के (ग) (घ); २ बतावै (घ); ३ बिगुन (व); ४ सर्गुन (ग); ५ रिचा उपनिषद गावै (व) मानैं (ङ); ६ गुनहीं (क) (ख) (ङ)।

[२०]

जो उनके गुन नाहिं और गुन भये[१] कहाँ तें,
बीज बिना तरु जमै मोहि तुम कहो कहाँ तें।
वा गुन की परछाँह री माया दर्पन बीच,
गुन तें गुन न्यारे भये अमल बारि मिलि[२] कीच।
सखा सुन स्याम के॥

[२१]

माया के गुन और और गुन हरि के जानो,
उन[१] गुन को[२] इन माँहि आनि काहे को सानो।
जाके गुन अरु रूप को जान न पायो भेद,
तातें निर्गुन ब्रह्म[४] कों बदत उपनिषद् बेद।
सुनो ब्रजनागरी॥

[२२]

बेदहु हरि के रूप स्वाँस मुख तें जो निसरै,
कर्म क्रिया आसक्ति सबै पिछली सुधि बिसरै।

बीसवाँ छंद—

१ लहे (घ); २ जल (क) (ख) (ङ)।

इक्कीसवाँ छंद—

१ वा (ग); २ सर्गुन कों (घ); ३ मांझ (ग); ४ रूप (क) (ख) (ङ) (च)।

कर्म मध्य ढूढ़ैं सबै किनहु न पायो देख,
कर्म रहित हो[1] पाइये तातें प्रेम बिसेख।
सखा सुन स्याम के ॥

[२३]

प्रेम जो कोऊ बस्तु रूप देखत लौ लागै,
बस्तु दृष्टि बिन कहौ कहा प्रेमी अनुरागै।
तरनि चन्द्र के रूप कों गुन नहिं पायो जान,
तौ उनको[1] कहु जानिये गुनातीत भगवान।
सुनो ब्रजनागरी ॥

[२४]

तरनि अकास प्रकास तेजमय[1] रह्यौ दुराई,
दिव्यदृष्टि बिनु कहौ कौन पै[2] देख्यौ जाई।
जिनकी वै आँखैं नहीं देखैं कब वह रूप,
तिन्हैं साँच क्यौं ऊपजै परे कर्म के कूप।
सखा सुन स्याम के ॥

बाइसवाँ छंद—

१ ही (ग) (घ) (ङ) है (च)।

तेइसवाँ छंद—

१ उनको गुन (घ) इनको (ङ)।

चौबीसवाँ छंद—

१ जाहि में (ग); २ हो रूप भले वह (क) (ख) (ङ) ही रूप भले वह (च)।

[२५]

जब करिये नित कर्म भक्तिहू जामैं[1] आई,
कर्म रूप कातें कह्यौ कौन पै छुट्यौ जाई।
क्रम क्रम कर्म सबहि किये कर्म नास ह्वै जाय,
तब आतम निष्कर्म[2] ह्वै निर्गुन ब्रह्म समाय।
सुनो ब्रजनागरी ॥

[२६]

जौ हरि के नहिं कर्म कर्मबंधन क्यों आवै,
तौ निर्गुन है[1] बस्तु मात्र परमान बतावै।
जौ उनको परमान है तो प्रभुता कछु नाहिं,
निर्गुन भये अतीत के सगुन सकल जग माहिं।
सखा सुन स्याम के ॥

[२७]

जो गुन आवै दृष्टि माँझ[1] नहिं ईस्वर[2] सारे,
इन सबहिन तें बासुदेव अच्युत[3] हैं न्यारे।

पचीसवाँ छंद—

१ तामैं (घ) : २ निहकर्म (ग)।

छब्बीसवाँ छंद—

१ नहिं (घ)।

सत्ताइसवाँ छंद—

१ माहि (ग) : २ नस्वर हैं (ग) निरगुन हैं (घ) : ३ अच्युत (क) (ख) (घ) ;

इंद्री दृष्टि बिकार तें रहित अधोक्षज[4] जोति[5],
सुद्ध सरूपी जान जिय तृप्ति जु तातें[6] होति।
सुनो ब्रजनागरी॥

[२८]

नास्तिक जे हैं लोग कहा जानैं हित[1] रूपै,
प्रगट भानु को छाँड़ि गहै परछाहीं धूपै।
हमकों बिन वा रूप के[2] और न कछू सुहाय,
ज्यों करतल आमलक के[3] कोटिक ब्रह्म दिखाय।
सखा सुन स्याम के॥

[२९]

ऐसे में नन्दलाल रूप नैनन के आगे,
आय गये छबि छाय बने पियरे उर[1] बागे।
ऊधव[2] सों मुख मोरि कै बैठि सकुचि कह[3] बात,
प्रेम अमृत मुख तें स्रवत अंबुज नैन चुवात[4]।
तरक रसरीति की॥

---

४ अधोक्षति (घ) रहत अधोक्षय (च); ५ ज्योति (घ); ६ ज्ञान की प्रापति तिनकों (घ)।

अट्ठाइसवाँ छंद—

१ निज (ग) (घ); २ हमरें तौ यह रूप बिन (ग): ३ आभास को (क) (ख (ङ) बस अमल के (घ)।

उन्तीसवाँ छंद—

१ पीरे पट (घ); २ ऊधौ (ग) उद्धव (व): ३ के कहि कछु उनते (क) (ख) कहि कछु उनतैं (ङ); ४ चुवात (ग) (घ) (च)।

[३०]

अहो नाथ रमानाथ और जदुनाथ गुसाईं[१],
नन्द नन्दन बिडराति फिरति तुम बिन सब[२] गाईं।
काहे न फेरि कृपाल ह्वै गो ग्वालन सुधि[३] लेहु[४],
दुख जलनिधि हम[५] बूड़हीं कर अवलंबन देहु[६]।
निठुर ह्वै[७] कहँ रहे ॥

[३१]

कोउ कहैं अहो[१] दरस देहु पुनि बेनु बजावौ[२],
दुरि दुरि बन की ओट कहा हिय लोन लगावौ[३]।
हमकों तुम पिय एक हौ तुमकों[४] हमसी कोरि,
बहुत भाँति[५] के रावरे[६] प्रीति न डारौ तोरि।
एकही बार यौं[७] ॥

तीसवाँ छंद—

१ गोसाईं (ग) (ङ) गोसाँईं (घ) श्रीनाथ और यदुनाथ गोसाईं (च); २ बन (ग) बन दुरी फिरति तुम बिन ए (घ); ३ सुख (क) (ख) (ग) (च); ४ देहु (क) (ख) (च); ५ दुख निधि जल में (क) (ख) (ङ) (च); ६ करि अवलम्ब न लेहु (क) (ख) (च); ७ क्यौं (घ)।

इकतीसवाँ छंद—

१ पिय (ग); २ सुनावौ (ग) दर्स देत स्यौं बैन सुनावहु (घ); ३ काटि कहा लोन लगावहु (घ); ४ हमको तुमसे एक है तुमको (क) (ख); ५ बहुताइत (ग); ६ नीके रहो (घ); ७ एकै बारही (क) (ख) (ङ)।

[३२]

कोउ कहैं अहो दरस देत पुनि[1] लेत दुराई,
यह छल विद्या कहो कौन[2] पिय तुम्हैं सिखाई।
हम परबस आधीन[3] हैं तातैं बोलत दीन,
जल बिन कहो कैसे जियैं गहिरे जल की[4] मीन।
बिचारहु रावरे॥

[३३]

कोउ कहैं अहो स्याम कहा इतराय गये हौ,
मथुरा को[1] अधिकार पाय महाराज भये हौ।
ऐसी कछु प्रभुता हुती जानत कोऊ नाहिं[2],
अबला बुद्धि (?) हम डर गईं[3] बली डरैं जग माहिं।
पराक्रम जानि कै॥

[३४]

कोउ कहैं अहो स्याम चहत मारन जो ऐसे,
गिरि गोबर्धन[1] धारि करी रच्छा[2] तुम कैसे।

बत्तीसवाँ छंद—

१ फिर (क) (ख) फिरि (च); २ कवन (घ); ३ सब दस अधीन (घ); ४ पराधीन जे (ग) परमातुर जिमि (घ)।

तैतीसवाँ छंद—

१ मधुपुरि को (घ); २ ऐसी तौ प्रभुता कछू अहो कहत कोउ नाहिं (घ); ३ बध सुनि डरि गये (क) (ख) (ग) (ङ)।

चौतीसवाँ छंद—

१ गोबरधन कर (ग) गोवर्द्धन कर (घ); २ रक्षा (क) (ख) (घ);

ब्याल अनल विष[3]ज्वाल तें राखि लये सब ठौर,
अब बिरहानल दहत हौ हँसि हँसि नन्दकिसोर[4] ।
चोरि चित लै गये[5] ॥

[३५]

कोउ कहैं ये निठुर इन्हें पातक नहिं व्यापै,
पाप पुन्य के करनहार ये ही हैं आपै ।
इनके निर्दय[1] रूप में नाहिन कछू बिचित्र,
पय पीवत ही पूतना मारी[2] बाल चरित्र ।
मित्र ये कौन के ॥

[३६]

कोउ कहै री आज नाहिं आगे चलि आई,
रामचंद्र के धर्म रूप में ही निठुराई ।
जग्य[1] करावन[2] जातहे बिस्वामित्र समीप,
मग में मारी ताड़का रघुबंसी कुलदीप ।
बालही[3] रीति यह ॥

---

३ अरु (क) (ख) (ङ) ; ४ विरहानल अब दाहिहौ हाँसी नंद किसोर (घ) ; ५ होयगी जगत में (घ) ।

पैंतीसवाँ छंद—

१ निरदै (ग) ; २ प्यावत प्रानन हरे पुतना (ग) पीयत प्रानन हरे पुतना (ङ) ।

छत्तीसवाँ छंद—

१ यज्ञ (क) (ख) जज्ञ (ङ) ; २ मख राखन बन (घ) ; ३ प्रथम की (घ) ।

[३७]

कोउ कहै जे परम धर्म इस्त्रीजित[1] पूरे,
लच्छ लच्छ[2] संधान धरे आयुध के रूरे[3]।
सीताजू के कहे तें सूपनखा[4] पै कोपि,
छेदि अंग बिरूप कै लोगन लज्जा लोपि[5]।
कहा ताकी कथा ॥

[३८]

कोउ कहै री सुनौ और इनके गुन आली,
बलि राजा पै गये भूमि माँगन बनमाली।
माँगत बामन रूप धरि नापत करी कुदाँव[1],
सत्य[2]धर्म सब[3] छाँड़ि कै धर्यौ पीठ पै पाँव।
लोभ की नाव ये ॥

[३९]

कोउ कहै री कहा हिरनकस्यप तें बिगर्यौ,
परम ढीठ प्रहलाद पिता के सनमुख[1] झगर्यौ।

सैंतीसवाँ छंद—

१ इन्द्रीजित (ङ) स्त्रीजित (च); २ लच्छ लच्छ (क) (ख); ३ हत्यौ बालि बलवान बान आयुध लै सूरे (घ); ४ सूर्पनखा (ग) (ङ); ५ तब लछमन के बान तें करी नासिका लोप (घ)।

अड़तीसवाँ छंद—

१ परबत भये अकाय (क) (ख) (ग); २ सत्त (ग); दोउ (घ)।

उन्तालीसवाँ छंद—

१ अपने सों (घ);

सुत अपने को देत हो सिच्छा खंभ बँधाय[2],
इन बपु धरि नरसिंह को नखन बिदारयौ जाय।
बिना अपराध ही ॥

[४०]

कोउ कहै इन परसुराम ह्वै माता मारी,
फरसा काँधे धरी भूमि छत्रिन[1] संघारी।
सोनित कुण्ड भराय के पोषे अपने पित्र,
इनके निर्दय रूप में नाहिन कछू बिचित्र[2]।
बिलग कह मानिये ॥

[४१]

कोउ कहै री कहा दोष सिसुपाल नरेसै,
ब्याह करन कौ गयौ नृपति भीषम के देसै।
दलबल जोरि बरात कौं ठाढ़े हैं छबि बाढ़ि,
इन छल करि दुलही हरी छुधित[1] ग्रास मुख काढ़ि।
आपने स्वारथी[2] ॥

---

२ सिक्षा दंड बताय (क) (ख) (ङ)।

चालीसवाँ छंद—

१ क्षत्रिन (क) (ख) ; २ अजब काह अस चित्र (घ)।

इकतालीसवाँ छंद—

१ क्षुधित (क) (ख) (घ) ; २ स्वारथहि (ङ)।

[४२]

यहि बिधि होइ आवेस परम प्रेमहिं अनुरागी,
और रूप पिय चरित तहाँ ते[1] देखन[2] लागी।
रोम रोम रहे ब्यापि कै जिनके मोहन आय,
तिनके भूत भविष्य कौं जानत कौन दुराय।
रँगीली प्रेम की॥

[४३]

देखत इनको प्रेम नेम ऊधव[1] को भाज्यौ,
तिमिर भाव आवेस बहुत अपने मन लाज्यौ।
मन में कह रज पाय कै लै माथे निज धारि,
हौं तो कृतकृत[2] ह्वै रह्यौं त्रिभुवन आनँद वारि।
बंदना जोग ये॥

[४४]

कबहुँ कहै गुन गाय स्याम के इनहिं रिझाऊँ,
प्रेम भक्ति तें भले[1] स्यामसुंदर को पाऊँ।

बयालीसवाँ छंद—

१ सब (ग) ; २ मनों तहाँ सोचन (घ)।

तेतालीसवाँ छंद—

१ ऊधौ (क) (ग) ऊधो (ख) (घ); २ परम कृतारथ (ग) (घ)।

चवालीसवाँ छंद—

१ तातें प्रेमाभक्ति (क) (ख) तातैं प्रेमासक्ति (ङ) ;

जिहि बिधि मोपै रीझहीं सो बिधि करौं बनाय,
　　तातें मो मन सुद्ध ह्वै दुबिधा ग्यान[२] मिटाय।
　　　　　　　　　　पाय रस प्रेम को ॥

[४५]

ताही छिन इक भँवर कहूँ तें उड़ि तहँ आयो,
　　ब्रज बनितन के पुंज माँहि गुंजत छबि छायो।
बैठ्यौ चाहत पायँ पर[१] अरुन कमल दल जानि,
　　मनु मधुकर ऊधव[२] भयौ[३] प्रथमहि प्रगट्यौ आनि।
　　　　　　　　　　मधुप को भेस धरि ॥

[४६]

ताहि भँवर सों कहैं सबै प्रति उत्तर बातैं,
　　तर्क बितर्कनि जुक्त[१] प्रेमरस रूपी घातैं।
जनि परसौ मम पाँव रे तुम मानत हम चोर,
　　तुमही सों कपटी हुते मोहन नंदकिसोर।
　　　　　　　　　　यहाँ तें दूरि हो ॥

---

२ ज्ञान (क) (ख)।

पैतालीसवाँ छंद—

१ चढ़यौ चहत पग पगनि पर (क) (ख) (ङ); २ ऊधो (क) (ख) मो मन ऊधौ को (ग); ३ मानहुँ मन उद्धव यहै (घ) मानो मन ऊधो भयो (च)।

छयालीसवाँ छंद—

१ युक्त (घ)।

[४७]

कोउ कहै री बिस्व माँझ जेते हैं कारे,
कपट कुटिल की कोटि परम मानुष मसिहारे[1]।
एक स्याम तन परसि कै जरत आजु लौं अंग,
ता पाछे यह मधुपहू लायो जोग भुवंग[2]।
कहाँ इनको दया ॥

[४८]

कोउ कहै री मधुप भेस उनही को धारयौ,
स्याम पीत गुञ्जार बैन[1] किंकिनि झनकारयौ।
वा पुर गोरस[2] चोरि कै फिरि आयो यहि देस,
इनको जनि मानहु कोऊ कपटी इनको भेस।
चोरि जनि जाय कछु ॥

[४९]

कोउ कहै रे मधुप कहैं अनुरागी तुमको,
कौने गुन को जानि यही[1] अचरज है हमको।

सैतालीसवाँ छंद—

१ कोटि के परम कुटिल मानव विषवारे (ग) कपटी कुटिल कठोर खरे मानुष विष हारे (घ); २ भुअंग (ग) भुजङ्ग (ङ)।

अड़तालीसवाँ छंद—

१ बेनु (ग); २ वा पुर को रस (घ)।

उनचासवाँ छंद—

१ परम (ग);

कारो तन अति[२] पातकी मुख पियरो जगनिंद,
गुन अवगुन सब आपनो आपुहि जानि अलिंद[३]।
देखि लै[४] आरसी ॥

[५०]

कोउ कहै रे मधुप कहा तू रस को जानै[१],
बहुत कुसुम पै बैठि सबै आपन सम मानै[२]।
आपन सम हमको कियो चाहत है मतिमंद,
द्विविध ग्यान[३] उपजाय कै दुखित प्रेम आनंद।
कपट के छंद सों ॥

[५१]

कोउ कहै रे मधुप कहा मोहन गुन गावै[१],
हृदय कपट सों परम प्रेम नाहिन छबि पावै[२]।
जानति हौ सब भाँति कै सरबस लयो चुराय,
यह बौरी ब्रजबासिनी को जो तुम्हे पतियाय।
लहे[३] हम जानिकै ॥

---

२ मन (घ); ३ आपने ह्वै हो जानि अनंद (घ); ४ के (घ)।

पचासवाँ छंद—

१ रस की गति जानहिं (घ); २ सम रस करि मानहिं (घ); ३ दुबिधा रस (ग)।

इक्यावनवाँ छंद—

१ गावहु (घ); २ है प्रगट प्रेम नाहीं छबि पावहु (घ); ३ लिये (घ)।

[५२]

कोउ कहै रे मधुप कौन कह तोहिं मधुकारी[1],
लिये फिरत मुख जोग गाँठि काटत बेकारी[2]।
रुधिर पान कियो बहुत कै अरुन अधर रँगरात,
अब ब्रज में आये कहा करन कौन कों घात।
जात किन पातकी॥

[५३]

कोउ कहै रे मधुप प्रेम षटपद पसु[1] देख्यो,
अबलौं यहि ब्रजदेस माहिं कोउ नाहिं बिसेख्यो।
द्वै सिंग आनन उपर रे कारो पीरो[2] गात,
खल अमृत सम मानही[3] अमृत देखि डरात।
बादि यह रसिकता[4]॥

बावनवाँ छंद—

१ तुमकों कह मधुकर (घ); बिष जोग गाँठि प्रेमी बधकारी (ग) बिष गाँठि प्रेम मिस मनहुँ बाँधिकर (घ) योग गांठ कांटा व कटारी (च)।

तिरपनवाँ छंद—

१ प्रेमपद को सुख (ग); २ है सुरंग आसनन समुहि कारे पीरे (घ) ३ मानई (घ); ४ रस कथा (ग)।

[५४]

कोउ कहै रे मधुप ग्यान[1] उलटो लै आयो।

मुक्ति परे जे रसिक तिन्हैं फिरि कर्म बतायो।

बेद उपनिषद सार जो मोहन गुन गहि लेत[2],

तिनको आतम सुद्ध करि[3] फिरि फिरि संथा[4] देत[5]।

जोग चटसार मैं॥

[५५]

कोउ कहै रे मधुप निगुन इन बहुकरि जान्यो[1],

तर्क बितर्कनि जुक्ति बहुत उनहीं यह आन्यो[2]।

पै इतनो नहिं जानहीं[3] बस्तु बिना गुन नाहिं,

निर्गुन भए अतीत के सगुन सकल जग माहिं[4]।

सखा सुन स्याम के[5]॥

चौवनवाँ छंद—

१ ज्ञान (क) (ख) (घ); २ लीन (घ); ३ ऊनम सिद्ध की (घ) ४ कंथा (ङ); ५ दीन (घ)।

पचपनवाँ छंद—

१ सगुन निर्गुन वह जानो (घ); २ में मान्यो (ग) युक्ति बहुतै जो आनो (घ); ३ ए इतनी नहिं जानिहै (घ); सक्ति जो स्याम की लखी सगुनता माहिं (घ); ५ ज्योति रस बिंब ज्यौं (घ) बूझ जो ग्यान हो (ग)।

[५६]

कोउ कहै रे मधुप तुम्हैं लज्जा नहिं आवै,
सखा[1] तुम्हारो स्याम कुबरीनाथ[2] कहावै।
यह नीची पदवी हुतो गोपीनाथ कहाय,
अब जदुकुल पावन भयो दासी जूठन खाय।
मरत कह बोल को॥

[५७]

कोउ कहै कहो मधुप स्याम जोगी तुम चेला,
कुबजा तीरथ जाय कियो इंद्रिन को मेला।
मधुबन सुधि बिसराय कै[1] आये गोकुल माहिं,
इहाँ सबै प्रेमी बसैं[2] तुमरो गाहक नाहिं।
पधारौ रावरे॥

[५८]

कोउ कहै रे मधुप साधु मधुबन के ऐसे,
और तहाँ के सिद्ध लोग ह्वै हैं धौं कैसे।

छप्पनवाँ छंद—

१ स्वामी (ग) (घ) ; २ कूबरी दास (ग)।

सत्तावनवाँ छंद—

१ सिद्ध कहाय कै (घ) ; २ इत सब प्रेमी बसत हैं (ग)।

औगुन गुन गहि लेत हैं गुनको डारत मेटि,
मोहन निर्गुन को गहे तुम[1] साधुन कों भेंटि।
गाँठि को खोय कै॥

[५६]

कोउ कहै रे मधुप होहिं तुमसे जे संगी,
क्यों न होहिं तन स्याम सकल बातन चौरंगी[1]।
गोकुल में जोरी कोऊ पाई नाहिं मुरारि,
मदन त्रिभंगी आपु हैं करी त्रिभंगी नारि।
रूप गुन सील की॥

[६०]

यहि बिधि सुमिरि गोबिंद[1] कहत ऊधव प्रति गोपी,
भृँग संग्या[2] करि कहत सकल कुल लज्जा लोपी।

अट्ठावनवाँ छंद—

१ क्यौं न होंहि उन (ग)।

उनसठवाँ छंद—

१ वे स्याम सबै बातन चतुरंगी (घ) : २ आगरी (घ)।

साठवाँ छंद—

१ गुबिन्द(घ) (ङ) २ ऊधो (क) (ख) ऊधौ (ग) नीति उद्धव (घ) ; ३ संज्ञा(क) (ख) (घ) ;

ता पाछे इकबार ही रोई[४] सकल ब्रजनारि[५],
हा करुनामय नाथ हो केसव कृष्ण मुरारि[६]।
फाटि हियरो चल्यो[७]

[६१]

उमगै जो कोउ सलिल सिन्धु लै तन की धारनि[१],
भींजत अम्बुज नीर कंचुकी भूषन[२] हारनि[३]।
ताही प्रेम प्रबाह में ऊधव[४] चले बहाय,
भली ग्यान की मेंड हौं[५] ब्रज में दीन्हीं आय।
सकल कुल तरि गयो[६] ॥

[६२]

प्रेम प्रसंसा करत सुद्ध जो भक्ति प्रकासी,
दुबिधा ग्यान गिलानि मंदता सिगरी नासी।

---

४ रुदित (क) (ख) रुदति (ङ) ; ५ तन मन तें छबि स्याम की ऐसी दई दिखाय (घ) ; ६ जिमि गोरस गोरस मिले नेकु न बिलग जनाय (घ) ; ७ अधिकता प्रेम की(घ)।

इकसठवाँ छंद—

१ उमगी कोउ जे सलिल अस्तु नैनन इक धारा (घ) ; २ बहु गुन (ख) (ङ) (च) ; ३ भिंजवत औ बहि जात कौतुकी सिंधु अपारा (घ) ; ४ ऊधौ (ग) ताहि प्रेममय सिंधु में उद्धव (घ) ; ५ नेव मैं (घ) ; ६ कूल तारन भये (क) (ख) (ङ) कूल के तृन भये (ग)।

कहत मोहिं बिस्मय भयो हरि के ये[1] निज पात्र,
हौं तो कृतकृत ह्वै गयो इनके दरसन मात्र।
मेटि मल ग्यान को ॥

[६३]

पुनि पुनि कहि हरि कहन बात एकान्त पठायो,
मैं इनकौ कछु मरम जानि एकौ नहिं पायो।
हौं तो निज मरजाद सों ग्यान कर्म कह्यो[1] रोपि[2],
ये सब प्रेमासक्ति ह्वै कुल लज्जा करि लोपि।
धन्य ये गोपिका ॥

[६४]

जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन कौं ध्यावैं,
काहे न परमानंद प्रेम पद पी कौ[1] पावैं।
ग्यान जोग सब कर्म तें प्रेम परे है साँच,
हौं यहि पटतर देत हौं हीरा आगे काँच।
विषमता बुद्धि की ॥

बासठवाँ छंद—

१ कहत भयो निश्चय यही हरि रस के (ग) (घ)।

तिरसठवाँ छंद—

१ कह्यों निज मरजाद को ज्ञान कर्म लो (क) (ख) ; २ कह निज मरजाद की ग्यानरु कर्म निरूपि (ग)।

चौसठवाँ छंद—

१ पदवी को (ग) पदवी सुख (घ)।

[६५]

धन्य धन्य जे लोग भजत हरि कौं जो ऐसे,
और जो पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसे।
मेरे या लघु ग्यान कों उर मद रह्यो उपाध[1],
अब जान्यौं ब्रज प्रेम को लहत न आधौ[2] आध।
बृथा स्रम करि मर्यौ[3] ॥

[६६]

पुनि कह सब तें साधु संग उत्तम है भाई,
पारस परसे लोह तुरत कंचन ह्वै जाई।
गोपी प्रेम प्रमाद कौ हौं अब सीख्यौ आय,[1]
ऊधव तैं मधुकर भये दुबिधा ग्यान मिटाय[2]।
पाय रस प्रेम को[3] ॥

पैंसठवाँ छंद—

१ ज्ञान को उर में मद रह्यौ बाव (घ); २ तब जान्यौं अब प्रेम को लहति न आधो (घ); ३ थके (क) (ख) कै मुयौं (घ)।

छासठवाँ छंद—

१ स्वाति बूंद सीपहि मिले मुकुता होत सुभाय (घ); २ नीर छीर सँग के मिले बिसद रूप दरसाय (घ); ३ संग को गुन लखो (घ)।

[६७]

पुनि कहि परसत पाँय प्रथम हौं इनहिं निवारयौ[१],
भृँग संग्या करि कहत निंद सबहिन तें डारयौ[२]।
अब रहिहौं ब्रजभूमि की ह्वै पग मारग धूरि[३],
बिचरत पद मोपै परै सब सुख जीवन मूरि[४]।
मुनिनहूँ दुर्लभै[५]।

[६८]

कैस होंहु द्रुम लता बेलि बल्ली बन माहीं,
आवत जात सुभाय परै मोपै परछाहीं।
सोऊ मेरे बस नहीं जो कछु करौं उपाय,
मोहन होहिं प्रसन्न जो यह बर माँगौं जाय।
कृपा करि देहु जू[१]॥

सड़सठवाँ छंद—

१ सबनि हौं प्रेमहि वारो (घ) ; २ भृंगी संज्ञा करत बिसद गुन गन विस्तारो (ब) ; ३ तब अतिसै कृत कृत्य ह्वै भूअ बसे सहि पाय (घ) ; ४ उद्धव तें मधुकर भये मुद्रा योग मिटाय (घ) ; ५ लही यह संपदा (ग) ।

अड़सठवाँ छंद—

१ देहिं जौ (ग) ।

[६९]

ऐसे मग अभिलाष[1] करत मथुरा फिर आयौ,
गदगद पुलकित रोम अंग आवेस जनायौ।
गोपी गुन गावन लग्यौ मोहन गुन गयौ भूलि,
जीवन कों लै का करौं पायौ जीवन मूलि।
भक्ति कौ सार[2] यह॥

[७०]

ऐसे सोचत जहाँ स्याम तहँ आयो धायो,
परिकरमा दंडौत[1] बहुत आवेस जनायो।
कछु निर्दयता[2] स्याम की करि क्रोधित[3] दोउ नैन,
कछु ब्रजबनिता प्रेम की बोलत रस भरि बैन।
सुनो नँदलाडिले॥

[७१]

करुनामयी रसिकता है तुम्हारी सब झूँठी[1],
जबहि लौं नहिं लखौ तबहिं लौं बाँधी मूँठी[2]।

उनहत्तरवाँ छंद—

१ इहि विधि मन अभिलाख (घ); २ मूल (घ)।

सत्तरवाँ छंद—

१ दण्डवत (ङ); २ निरदयता (ग) निरदैता (घ); ३ सोच सजल (घ)।

इकहत्तरवाँ छंद—

१ करुनामय औ रसिक प्रकृति तुमरी सब झूठा (घ); २ ब्रिज बनितन दुख दियो सबन मन करि निज मूठी (घ)।

मैं जान्यौ ब्रज जायकै तुम्हरो निर्दय रूप,
जे तुमकों अवलंबहीं तिनकों मेलौ कूप।
कौन यह धर्म है॥

[७२]

पुनि पुनि कहैं अहो स्याम जाय बृंदावन रहिये,
परम प्रेम को पुंज जहां[1] गोपिन सँग लहिये।
और काम सब छाँड़ि कै उन लोगन सुख देहु,
नातरु टूट्यो जात है अबही नेह सनेहु।
करौगे तौ कहा॥

[७३]

सुनत सखा के बैन नैन भरि आये दोऊ,
बिबस प्रेम आवेस रही नाहीं सुधि कोऊ।
रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै रहि साँवर[1] गात,
कल्पतरोरुह[2] साँवरो ब्रजबनिता भईं[3] पात।
उलहि अँग अङ्ग तें॥

बहत्तरवाँ छंद—

१ प्रेमपुंज को प्रेम जाय (क) (ख) (घ)।

तिहत्तरवाँ छंद—

१ गयो सिगरो (घ); २ काम तरोवर (ग); ३ काम तरोवर रस भरै ब्रिज बनिता के (घ)।

[७४]

ह्वै सचेत कहि भलो सखा पठयो सुधि ल्यावन,
अवगुन हमरे आनि तहाँ तें लगे बतावन[१]।
मोमैं उनमैं अन्तरो एकौ छिन भरि नाहिं[२],
ज्यौं देखौ मो माहिं वै त्यौं मैं[३] उनहीं माहिं।
तरङ्गनि बारि ज्यौं ॥

[७५]

गोपी रूप दिखाय तबै मोहन[१] बनवारी,
ऊधौ[२] भ्रमहिं निवारि डारि मुख मोह की जारी[३]।
अपनौ रूप दिखाय कै[४] लीन्हौं बहुरि दुराय[५],
नन्ददास पावन भयो जो यह लीला गाय[६]।
प्रेम रस पुंजनी[७] ॥

चौहत्तरवाँ छंद—

१ दिखावन (ग) (घ) ; २ उनमें मोमें हे सखा छिन भरि अंतर नाहि (ग) ; ३ हौं हूँ (ग)।

पचहत्तरवाँ छंद—

१ आप दिखाइ एक करिकै (ग) (घ) ; २ ऊद्धव (घ) ; ३ के भरे नैन डारि व्यामोहक जारी (ग) ; ४ बिहार को (ग) ; ५ हम उद्धव जानी नहीं ओछी करिहैं प्रीत (घ) ; ६ भली भई प्रभु सों चली जग में उलटी रीत (घ) ; ७ कह्यो रोमांच ह्वै (घ) पुंज की (क)।

॥ संपूर्णम् ॥

टिप्पणी

[१]

[कोष्ठक में दिये हुए अङ्क दोहों की संख्या के सूचक हैं।]

ब्रजनागरी— ब्रजवासिनी।

लावन्य— [सं० लावण्य] 'लावण्य' के अर्थ तो वास्तव में सुन्दरता के होते हैं, किन्तु यहाँ वह 'स्वभाव के अच्छेपन' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

आगरी— [सं० आकार] [स्त्री० आगरी] खान, समूह।

यथा— "जेहि नाम श्रुति कीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।"—तुलसी

प्रेम धुजा— प्रेम ध्वजा; प्रेम करनेवालियों में सर्वोपरि।

रसरूपिनी— प्रेम की साक्षात् मूर्ति। भाव यह है कि गोपियों का हृदय प्रेम-रस से ऐसा परिपूर्ण था कि वे प्रेम की साक्षात् मूर्ति सी मालूम होती थीं।

पुंज—समूह।

स्याम बिलासिनी—कृष्णचन्द्र जी के साथ विहार करनेवाली।

[२]

संकेत— एकान्त स्थान।

मधुपुरी— मथुरा का प्राचीन नाम।

[३]

प्रेम बेली द्रुम फूली— प्रेमरूपी लता में फूल निकल आए। भाव यह है कि उद्धव के मुख से श्याम का नाम सुनकर गोपियों का हृदय आनन्द और प्रेम से परिपूर्ण हो उठा।

ब्यवस्था— [सं० व्यवस्था] विधान, नियम।

[४]

अर्घासन— (अर्घ+आसन) अर्घ देकर आसन देना।

अर्घ— वह जल जो सम्मान प्रकट करने के लिए गिराया जाता है।

[५]

तीर—निकट, समीप।

[६]

आवेस— [सं० आवेश] स्फूर्ति, जोश।

[७]

अखिल........बिसेखौ— 'समस्त संसार ब्रह्ममय है'—इस उपदेश द्वारा उद्धव 'अद्वैतवाद' की ओर संकेत करते हैं।

'अद्वैतवाद' वह सिद्धान्त है जिसमें ब्रह्म के अतिरिक्त समस्त संसार मिथ्या समझा जाता है। इस मत के माननेवालों का कहना है कि जिस प्रकार रस्सी के स्वरूप को न जानने से सर्प का बोध होता है, उसी प्रकार ब्रह्म के रूप को न जानने से संसार

[७]

ब्रह्म से भिन्न जान पड़ता है। अंत में ज्ञान आने पर समस्त संसार ब्रह्ममय प्रतीत होने लगता है।

यथा— 'सियाराम मय सब जग जानी।''

—तुलसी

दारु— लकड़ी।

सचर— चलने वाले पदार्थ; जंगम पदार्थ।

अचर— न चलने वाले पदार्थ; जड़ पदार्थ।

[८]

ठगोरी— मोहित करने वाली शक्ति; जादू।

[९]

सगुन— सत्त्व, रज और तम, इन तीनों गुणों से युक्त।

उपाधि— 'उपाधि' के अर्थ तो वास्तव में 'प्रतिभा-सूचक पद' के होते हैं, किन्तु यहाँ यह 'लक्षण' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

निर्गुन— सत्त्व, रज और तम, इन तीनों गुणों से रहित।

निरविकार— [सं० निर्विकार] जिसमें किसी प्रकार का दोष अथवा परिवर्तन न हो।

निरलेप— [सं० निर्लेप] विषय-भोगादि से रहित।

अच्चुत— [सं० अच्युत] जिसका नाश न हो अर्थात् अविनाशी, नित्य।

[१०]

गोवर्द्धन— श्री वृन्दावन का एक पर्वत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उसे एक बार बहुत अधिक वर्षा होने पर वृन्दावन-निवासियों की रक्षा करने के लिए कृष्णचन्द्र जी ने अपनी अँगुली पर उठा लिया था।

गोवर्द्धन-धारण की कथा—

वृन्दावन के गोपगण प्रतिवर्ष वर्षाकाल में इन्द्र की पूजा किया करते थे। उन लोगों का विश्वास था कि इन्द्र की पूजा करने से वे सब प्रकार के संकटों से बचे रहेंगे। श्रीकृष्णचन्द्र जी के वृन्दावन आने पर वे (गोपगण) एक वर्ष बड़े उत्साह के साथ इन्द्रोत्सव का आयोजन कर रहे थे। उसी समय श्रीकृष्ण ने आकर उन्हें इन्द्रपूजा करने से मना किया और उसके स्थान पर गोवर्द्धन पर्वत की पूजा करने की आज्ञा दी। श्रीकृष्ण की आज्ञा को शिरोधार्य कर गोपकुल ने उस वर्ष इन्द्रोत्सव न मनाकर गोवर्द्धन की ही पूजा की। उनके इस व्यवहार से क्रुद्ध होकर सुरपति इन्द्र ने मेघगण को वृन्दावन के नष्ट-भ्रष्ट करने की आज्ञा दी। मेघ इन्द्र के आदेशानुसार वृन्दावन पर शिलावृष्टि और वज्रपात करने लगे। गोपगण इस उत्पात को क्षण भर भी सहन न कर सके। वे रोते-रोते कृष्ण के निकट उपस्थित हुए। उसी समय श्रीकृष्णचन्द्रजी ने गोपकुल और गोकुल की

[५]

रक्षा करने के लिए गोवर्द्धन पर्वत को अँगुली पर उठा लिया। ऐसा करने से सभी को आश्रय मिला। इस प्रकार सात दिन तक श्रीकृष्णचन्द्र जी पर्वत को अँगुली पर उठाए रहे। जब इन्द्रानुचर मेघ ने देखा कि सात दिन सात रात्रि तक अविश्रान्त शिलावृष्टि और वज्रपात होने पर भी वृन्दावन-वासियों का कोई अनिष्ट न हो सका, तब वे उसी समय अपने कार्य से विरत हो इन्द्र के पास लौट गए।

[११]

अखिल— सम्पूर्ण, अखण्ड।

अंड— गोलाकार संसार, लोक-मंडल।

ब्रह्मंड— विश्वगोलक ; सम्पूर्ण विश्व, जिसके भीतर अनंत लोक हैं।

विशेष— मनु ने लिखा है कि स्वयंभू भगवान ने प्रजासृष्टि की इच्छा से पहिले जल की सृष्टि की और उसमें बीज फेंका। बीज पड़ते ही सूर्य के समान प्रकाशवाला स्वर्णाभ अंड या गोल उत्पन्न हुआ। पितामह ब्रह्मा का इसी अंड में जन्म हुआ। उसमें अपने एक संवत्सर तक निवास करके उन्होंने उसके आधे आधे दो खंड किए। ऊर्ध्व-खंड में स्वर्ग आदि लोकों की और अधो-खंड में पृथ्वी आदि की रचना की। विश्वगोलक इसी से 'ब्रह्मंड' कहा जाता है।

[११]

लीला......है— लीला करने के लिए सगुण अवतार धारण करके।

जोग जुगुति— [सं० योग युक्ति] योग-साधन की क्रियाएँ।

विशेष— योग साधन का उपाय यह बतलाया गया है कि पहिले किसी स्थूल विषय का आधार लेकर, उसके उपरांत किसी सूक्ष्म वस्तु को लेकर और अंत में सब विषयों का परित्याग करके चलना चाहिए और अपना चित्त स्थिर करना चाहिए। चित्त की वृत्तियों को रोकने के जो उपाय बतलाए गए हैं, वे इस प्रकार हैं—अभ्यास और वैराग्य, ईश्वर का प्रणिधान, प्राणायाम और समाधि, विषयों से विरक्ति आदि। यह भी कहा गया है कि जो लोग योग का अभ्यास करते हैं, उनमें अनेक प्रकार की विलक्षण शक्तियाँ आजाती हैं, जिन्हें विभूति या सिद्धि कहते हैं।

[१२]

जोग— [सं० योग] दर्शनकार पतंजलि के अनुसार चित्त की वृत्तियों को चंचल होने से रोकना। मन को इधर उधर भटकने न देना, केवल एक ही वस्तु में स्थिर रखना।

छः दर्शनों में से एक, जिसमें चित्त को एकाग्र करके ईश्वर में लीन करने का विधान है।

[७]

विशेष— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, ये आठों योग के अंग कहे गए हैं। योग-सिद्धि के लिए इन आठों अंगों का साधन आवश्यक और अनिवार्य्य कहा गया है। जो व्यक्ति इन आठों अंगों को सिद्ध कर लेता है, वह सब प्रकार के क्लेशों से छूट जाता है, अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है और अन्त में कैवल्य (मुक्ति) का भागी होता है।

समेटै धूरि-- भस्म लगा के आसन मार कर योग साधना।

[१२]

धूरि— भस्म।

धूरि क्षेत्र— पृथ्वी।

हरिपद— वैकुण्ठ।

लोक— स्थान विशेष ; विश्व-विभाग।

विशेष— उपनिषदों में दो लोक माने गए हैं—इहलोक और परलोक। निरुक्त में तीन लोकों का उल्लेख मिलता है—पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक। इनका दूसरा नाम भूः भुवः और स्वः है। ये महाव्याहृति कहलाते हैं। इन तीन महाव्याहृतियों की भाँति चार और महः, जनः, तपः और सत्यम् शब्द हैं, जो तीनों महाव्याहृतियों के साथ मिलकर सप्तव्याहृत कहलाते हैं। इन सातों महाव्याहृतियों के नाम से पौराणिक काल में सात

लोकों की कल्पना हुई, जिनके नाम इस प्रकार हैं—भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक। फिर पीछे इनके साथ सात पाताल—जिनके नाम अतल, नितल, वितल, गभस्तिमान, तल, सुतल और पाताल हैं—और मिलाकर चौदह लोक किये गए। पुराणों में पातालों के नाम में मतभेद है। पद्म पुराण में इनके नाम अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल बतलाए गए हैं। अग्नि पुराण में अतल, सुतल, वितल, गभस्तिमान, महातल, रसातल और पाताल; तथा विष्णु पुराण में अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान, महातल, सुतल और पाताल इनके नाम लिखे गए हैं। इस प्रकार चौदह लोक या भुवन माने गए हैं।

दीप-[सं० द्वीप] स्थल का वह भाग, जो चारों ओर जल से घिरा हो।

विशेष— पुराणानुसार पृथ्वी सात द्वीपों में विभक्त की गई है। सात द्वीप ये हैं—जंबू द्वीप, कुश द्वीप, प्लक्ष द्वीप, शाल्मलि द्वीप, क्रौंच द्वीप, शाक द्वीप और पुष्कर द्वीप।

नवखंड— भूमि के नौ विभाग, यथा—भरत, इलावृत, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश।

[१४]

कर्म— 'कर्म' से तात्पर्य कर्मकाण्ड से है। जैसे, यज्ञादि कर्म।

आनि—लाकर।

[१६]

कर्म पाप.........बेरी—पाप लोहे की बेड़ी है और पुण्य सोने की, किन्तु हैं दोनों ही बेड़ियाँ।

भाव यह है कि अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के ही कर्मों से जीवात्मा को बंधन प्राप्त होता है। इस बंधन से जीवात्मा तभी मुक्त हो पाती है, जब वह कर्मकाण्ड को छोड़कर परमात्मा से सच्चा प्रेम करने लग जाती है।

[१७]

पद्मासन— योग-साधन का एक आसन जिसमें पलथी मार कर सीधे बैठते हैं।

ब्रह्म...है— ब्रह्मरूपी ज्योति में अपने को तपा करके और इस प्रकार अपनी आत्मा को निर्मल करके।

भाव यह है कि जिस प्रकार सोना जब अग्नि में खूब तपाया जाता है, तभी उसका असली रूप समझ में आता है, उसी प्रकार यह जीवात्मा जब ब्रह्मरूपी ज्योति में अपने को बिलकुल गला देती है, तभी उसका सच्चा रूप प्रगट होता है और वह उस ज्योति में लीन होने की अधिकारिणी समझी जाती है।

[१०]

सायुज्य— पाँच प्रकार की मुक्तियों में से एक प्रकार की मुक्ति जिसमें जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाती है।

[१८]

निज रूपहि जानैं— योगी तो केवल ब्रह्म-ज्योति तक पहुँचने का ही प्रयत्न करता है, किन्तु भक्त तो ईश्वर के साकार रूप को अपने ही रूप में वर्तमान पाता है।

प्रेम पियूषै— प्रेमरूपी अमृत द्वारा।

[१६]

नेति— एक संस्कृत वाक्य (न इति) जिसका अर्थ है 'इति नहीं' अर्थात् 'अंत नहीं हैं'। ब्रह्म या ईश्वर के सम्बन्ध में यह वाक्य उपनिषदों में अनन्तता सूचित करने के लिये आया है।

उदा० 'नेति नेति कहि वेद पुकारा।'

—तुलसी

[२०]

'माया' से यहाँ अभिप्राय प्रकृति से है।

[२१]

उपनिषद्— वेद का शिरोभाग। उपनिषद् को ऋषि-मुनियों ने वेद का शिरोभाग व वेदान्त बताया है। कारण कि वेद के इस अंश में ब्रह्म-विद्या अर्थात् आत्मा परमात्मा आदि का निरूपण किया गया है। वेद के अन्य अंशों में कर्मकाण्ड द्वारा पुण्य-लाभ का उपदेश दिया गया है।

[११]

विशेष— सनातन धर्म प्रधानतः दो भागों में विभक्त है—प्रवृत्ति धर्म और निवृत्ति धर्म। जिन पुण्य-कर्मादि के करने से इहलोक एवं परलोक में परम सुख तथा अशेष पुण्य की प्राप्ति होती है, उसे 'प्रवृत्ति-धर्म' कहते हैं। यह धर्म वेद के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं सूत्र-भाग में वर्णित है। ऐसे धर्माचरण को 'कर्मकाण्ड' कहते हैं।

दूसरे, जिस धर्म के अनुसार नित्य शांति तथा अक्षय मोक्षपद प्राप्त होता है, जिस धर्म के प्रभाव से सांसारिक माया-मोह सहज ही में छूट जाते हैं और जिस धर्म के अनुसरण से जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाती है तथा जन्म-मरण का भय दूर हो जाता है, उसका नाम 'निवृत्ति-धर्म' है। उपनिषद् नामक वेद के शिरो-भाग में यही निवृत्ति-धर्म वर्णित है। ऐसे धर्माचरण को 'ज्ञानकाण्ड' कहते हैं।

[२३]

लौ लागै— प्रेम उत्पन्न होना।

तरनि— सूर्य्य।

गुनातीत— (गुन+अतीत) गुणों से परे; जो सत्त्व, रज और तम, इन तीनों गुणों से अलग हो; परमेश्वर।

[२६]

तौ········बतावै— 'तौ' के यहाँ अर्थ 'जो' है। इस प्रकार पूरे चरण के अर्थ हुए कि जो परमात्मा निर्गुण है तो

[१२]

उसकी बनाई हुई वस्तुओं को कोई सीमा न होनी चाहिए।

निर्गुन .... अतीत के— निर्गुन के हट जाने पर।

[२७]

बासुदेव— वसुदेव के पुत्र, श्रीकृष्णचंद्र।

अधोक्ज [सं० अधोक्षज] कृष्ण का एक नाम।

[२८]

करतल .... दिखाय— सम्पूर्ण ब्रह्मांड हथेली पर रक्खे हुए आँवले के समान दिखलाई देता है।

[२९]

बने पियरे उर बागे— हृदय पर पीताम्बर धारण किये हुए।

[३०]

बिडरात फिरत— इधर उधर फिरना।

[३१]

दुरि दुरि— छिप-छिप कर।

[३४]

ब्याल अनल विष......ठौर— काली नाग के विष से और दावानल के ज्वाल से कृष्ण जी ने सब प्रकार हम लोगों की रक्षा की थी।

विशेष— काली नाग और दावानल की कथाएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं—

कालो नाग की कथा — भागवत पुराण में लिखा है कि राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूछा कि हे ब्रह्मन्! भगवान ने कालिन्दी के महागम्भीर जल के भीतर कैसे काली नाग को दण्ड दिया, सो कृपा कर वर्णन कीजिए। श्रीशुकदेव जी बोले कि हे राजन्! यमुना जी में काली नाग का एक कुण्ड था, जिसमें विष की अग्नि से नित्य जल औटता रहता था। आकाश के उड़नेवाले पक्षी उस गरल की ताप से जलकर उस जल में गिर पड़ते थे। उस विषैले जल की लहरों के जलकणों से मिला पवन जो चलता था उसके लगने से किनारे के वृक्ष सूख जाते थे। जो जीव भूले से उस कुण्ड के तट पर चले जाते थे, वे उसी समय उस जल की लपक से जलकर मर जाते थे। श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अपने मन में कहा कि इस कुण्ड में ऐसे विषशाली सर्प का रहना अत्यन्त दुःखदायक है। कारण कि जो कोई पशु, पक्षी व पुरुष इस जल को पीता है, वह एक क्षण भर भी नहीं जीता; उसी समय अकुलाकर मर जाता है; दूसरे यमुना के जल को दोष लगता है, इसलिए ऐसे दुष्ट का यहाँ से निकालना ही अच्छा है।

ऐसा सोचकर एक दिन ग्वाल-बालों को संग लेकर यमुना के निकट जा पहुँचे और सुदामा से गेंद मँगा

कर गेंद का खेल खेलने लगे। खेलते-खेलते कालिय-कुण्ड के निकट पहुँच गए, क्योंकि उन्हें तो अपना कार्य सिद्ध करना था। श्यामसुन्दर ने एक लड़के के मारने के बहाने गेंद को कालिय-दह में फेंक दिया। जब गेंद जल में जा पड़ी तो खेल बंद हो गया। अब क्या था, सुदामा ने दौड़कर श्यामसुन्दर की फेंट पकड़ ली और कहने लगे कि जब तक मैं अपना गेंद न ले लूँगा, तब तक तुझे न जाने दूँगा। यह सुनते ही भगवान ताल ठोंककर कालिय-कुण्ड में कूद पड़े। कूदने पर भगवान ने अपना विराट स्वरूप धारण कर लिया। ऐसे विराट स्वरूपवाले व्यक्ति को अपने ऊपर चढ़ा हुआ देखकर काली नाग घबड़ा उठा। उसके शरीर के सब बंद बंद ढीले पड़ गए, नस नस खुलने लगीं और हड्डियों के जोड़ जोड़ टूटने लगे। तब तो वह नाग अत्यन्त क्रोध करके कृष्णचंद्र जी से घोर युद्ध करने लगा। युद्ध का कुछ परिणाम न देखकर उसने अपने फणों को ऊपर उठा लिया और लम्बी लम्बी श्वासें लेता हुआ कृष्ण जी को मारने का अवसर देखने लगा। नाग के मस्तक को ऊपर उठा हुआ देखकर भगवान ने उसी समय पाँव की ठोकर से उसे नीचे दबा दिया। ठोकर लगने से नाग के मुख से रुधिर की धारा बहने लगी और वह

जीवन की आशा छोड़कर फणों को पृथ्वी पर पटकने लगा।

इस प्रकार भगवान कृष्ण ने काली नाग का मान-मर्दन करके ब्रजवासियों की रक्षा की।

दावानल की कथा--

श्री शुकदेव जी बोले कि हे परीक्षित्! जब सब ग्वाल-बाल खेल में लग गये, तब उनकी गायें चरती चरती महाघोर मुंजवन में चली गईं, क्योंकि वन में चारों ओर जो आग लग रही थी उसकी गर्मी से प्यास की मारी घबड़ा रही थीं। जब बलराम कृष्णादिक ग्वाल-बालों ने पशुओं को न देखा, तो मन में अत्यन्त दुःखी हुए और जहाँ तहाँ खोजने लगे; किंतु पता कहीं भी न लगा। अंत में भगवान कृष्ण ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से गायों का नाम ले लेकर पुकारना आरम्भ कर दिया। अपने अपने नाम सुनकर गायों ने चिल्ला चिल्ला कर यह सूचित किया कि वे सब कृष्ण की मनोहर वाणी को सुनती तो हैं, किन्तु मार्ग में आग लगी होने के कारण उनके समीप नहीं आसकतीं।

देखते ही देखते अग्नि ने ऐसा प्रचण्ड स्वरूप धारण कर लिया कि सब ग्वाल-बाल मृत्यु के भय से दुःखित होकर बलदेव जी सहित श्रीकृष्ण की शरण में जाकर

विनय करने लगे कि "हे कृष्ण, यह वन की अग्नि हमको भस्म करे डालती है ; आप हमारी रक्षा करें।" मित्रों के दीन वचन सुनकर कृष्ण जी कहने लगे कि "हे मित्रों भयभीत मत हो। अपनी अपनी आँखें मीच लो।" उसी समय श्रीकृष्ण के आज्ञानुसार सब ने अपने अपने नेत्र मूंद लिए। तब भगवान ने उस महा भयंकर अग्नि को पानकर अपने प्यारे मित्रों की जान बचाई।

जब ग्वाल-बालों ने नेत्र खोले तो फिर भाण्डीर बन में आगए और अपने आपको और गायों को अग्नि से छुटा देखकर बहुत विस्मित हुए।

[३५]

पूतना— एक दानवी जो कंस के भेजने से बालक श्रीकृष्ण को मारने के लिए गोकुल आई थी। इसने अपने स्तनों पर विष लगा लिया था जिससे श्रीकृष्ण दूध पीकर उसके प्रभाव से मर जायँ। परंतु कथा है कि श्रीकृष्ण पर विष का तो कुछ प्रभाव न पड़ा उल्टे उन्होंने इसका सारा रक्त चूस कर इसी को मार डाला।

[३६]

ताड़का— एक राक्षसी जिसे विश्वामित्र की आज्ञा से श्रीरामचंद्र ने मारा था।

[१७]

विशेष— इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कथा है कि यह सुकेतु नामक एक वीर यक्ष की कन्या थी। सुकेतु ने अपनी तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करके इस बलवती कन्या को पाया था जिसमें एक हज़ार हाथी का बल था। यह सुंद को ब्याही थी। जब अगस्त्य ऋषि ने किसी बात पर क्रुद्ध होकर सुंद को मार डाला, तब यह अपने पुत्र मारीच को लेकर अगस्त्य ऋषि को खाने दौड़ी। ऋषि के शाप से माता और पुत्र दोनों घोर राक्षस होगए। उसी समय से ये अगस्त्य जी के तपोवन का नाश करने लगे और उसे इन्होंने प्राणियों से शून्य कर दिया। यह सब व्यवस्था दशरथ से कहकर विश्वामित्र रामचंद्र जी को लाए और उनके हाथ से ताड़का का वध कराया।

[३७]

इस्त्रीजित— स्त्रीजित; वह पुरुष जो स्त्री के आधीन हो।

आयुध के रुरे— शस्त्र चलाने में निपुण।

सूपनखा—[सं० शूर्पणखा] एक प्रसिद्ध राक्षसी जो रावण की बहिन थी। कहते हैं कि इसके नख सूप के समान थे। राम के बनवास के समय काम से पीड़ित होकर यह राम के पास उनके साथ विवाह करने की इच्छा से गई थी। वहाँ राम के इशारे से लक्ष्मण ने इसकी

नाक और कान काट लिए थे। इसी का बदला लेने के लिए रावण सीता को हर ले गया था।

लोगन लज्जा लोपि—संसार के लोग क्या कहेंगे, इस बात का कुछ भी विचार न कर।

[३८]

बलि राजा—विरोचन के पुत्र और प्रह्लाद के पौत्र का नाम। यह दैत्य-जाति का राजा था। विष्णु ने वामन अवतार लेकर इसे छलकर पाताल भेजा था।

वामन—विष्णु भगवान का पाँचवा अवतार जो बलि को छलने के लिए अदिति के गर्भ से हुआ था।

विशेष—भागवत पुराण में लिखा है कि राजा परीक्षित ने शुकदेव से पूछा, हे ब्रह्मन्! भगवान विष्णु किस कारण वामनरूप में अवतीर्ण हुए और किस हेतु दीन मनुष्य की भाँति बलि के पास तीन पैर भूमि की याचना करने गए?" श्रीशुकदेव जी ने उत्तर दिया कि, हे राजन्! दैत्यराज बलि इन्द्र को जीतकर स्वर्ग का स्वामी बन बैठा। देवता अनाथ की तरह बलि द्वारा विताड़ित होकर चारों ओर भागने लगे। इंद्रमाता अदिति को इस बात से बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने कातरस्वर में प्रजापति कश्यप से प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! दैत्यों ने हमारा सब कुछ अपहरण कर लिया है। अब आप हमारी

रक्षा करें।' कश्यप ने कहा, 'भद्रे तुम भगवान वासुदेव की उपासना करो, वही तुम्हारा मंगल करेंगे।' इस पर अदिति ने पूछा कि किस प्रकार से उनकी आराधना करनी होगी? कश्यप ने कहा, 'देवि, फाल्गुन महीने के शुक्ल पक्ष में १२ दिनों तक पयोव्रत करो। ऐसा करने से भगवान विष्णु प्रसन्न होकर तुम्हारे यहाँ पुत्ररूप में जन्म लेंगे और तुम लोगों के दुःख को दूर करेंगे।'

अदिति ने कश्यप से इस व्रत का अनुष्टान करने का आदेश पाकर वैसा ही किया। कुछ दिन बीतने पर देवमाता अदिति ने भगवान को गर्भ में धारण किया। इसके बाद भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को अनादि भगवान विष्णु ने अदिति के यहाँ जन्म लिया। वामनदेव के भूमिष्ठ होते ही शङ्ख, दुन्दुभि प्रभृति का तुमुल शब्द होने लगा। अप्सराएँ हर्षित होकर नाचने लगीं। अदिति परम पुरुष को मनुष्य देह धारण कर अपने गृह में जन्म ग्रहण करते देख आश्चर्यान्वित और संतुष्ट हुईं। कश्यप भी आश्चर्यान्वित होकर जय जय शब्द उच्चारण करने लगे।

कुछ काल बाद जातकर्म तथा उपनयनादि संस्कार समाप्त होने पर एक दिन वामनदेव ने सुना कि दैत्यराज बलि ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया

है । उस समय वामनदेव ब्राह्मणरूप में भिक्षा माँगने के लिये उसके पास गए । नर्मदा नदी के उत्तर तट पर भृगुकच्छ नामक क्षेत्र में बलि के पुरोहित और ब्राह्मणों ने श्रेष्ठ यज्ञ आरम्भ किया था । भगवान वामनदेव वहाँ पहुँचे । भगवान की तेजःप्रभा देखकर सब स्तम्भित हो गए ।

वामनदेव को देखकर बलि ने उठकर उनका पैर धोया और उनसे बड़े ही नम्र शब्दों में कहा "ब्राह्मण, आपके आने में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? आप ब्रह्मर्षियों की मूर्तिमती तपस्या हैं । आपके पदार्पण से हमारा पितृकुल परितृप्त हुआ । आपकी जो इच्छा हो वही माँगिए ।"

भगवान ने बलि के वाक्य पर संतुष्ट होकर कहा, "दैत्यराज, मैं और कुछ नहीं चाहता । मैं अपने इस पैर से केवल तीन पैर नापकर भूमि चाहता हूँ ।

वामनदेव की बात सुनकर राजा बलि हँसने लगे और उन्होंने 'लीजिए' यह कहकर भूमिदान करने के लिए जल का पात्र हाथ में लेलिया । सर्वज्ञ दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने यह देखकर बलि से कहा, " बलि, यह साक्षात् विष्णु हैं । देवताओं के कार्यसाधन के लिए अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं । इनको दान देना स्वीकार कर तुम लाभ नहीं उठाओगे ।

माया वामनरूपधारी भगवान विष्णु तुम्हारा स्थान, ऐश्वर्य, धन, तेज, यश आदि सब अपहरण कर इन्द्र को प्रदान करेंगे। ये तीन पैरों से तीनों लोकों पर आक्रमण करेंगे। एक पैर से संपूर्ण पृथ्वी नाप लेंगे और दूसरे से स्वर्ग। तीसरे पैर के लिए तुम क्या दोगे? तुम्हारे पास कुछ नहीं रहेगा। यदि नहीं दोगे, तो तुम पर प्रतिज्ञा भंग करने का दोष लगेगा और तुम नरक को प्राप्त होगे। जिस दान से जीविका का कोई भी साधन न रह जाए, वह दान प्रशंसा के योग्य नहीं समझा जाता। श्रुति में लिखा है कि जीविका-वृत्ति की रक्षा के लिए झूठ बोलने में दोष नहीं होता। अतएव, इस संकट के समय में झूठ बोलकर भी अपनी रक्षा करो।"

राजा बलि शुक्राचार्य की बात सुनकर कहने लगे, "आपने जो उपदेश दिया, वह सर्वथा सत्य है। किन्तु मैं प्रह्लाद का पौत्र हूँ। 'दूँगा' कह कर मैं 'नहीं' कदापि नहीं कह सकता। सामान्य वञ्चकों की भाँति मैं ब्राह्मण को धोखा न दूँगा। ब्राह्मण को ठगने में मुझे जैसा भय हो रहा है, वैसा भय नरक, दरिद्रता, सिंहासन-च्युत या मृत्यु होने से भी न होगा।"

शुक्राचार्य ने बलि की बात पर रुष्ट होकर यह शाप दिया कि "तुमने मेरी आज्ञा की अवहेलना की

है, इसलिए तुम निकट भविष्य में श्रीभ्रष्ट हो जाओगे।" शुक्राचार्य के शाप से बलि विचलित न हुए और अपने सत्य-धर्म पर अटल रहे। इसके बाद उन्होंने वामनदेव को भूमिदान देने का संकल्प पढ़ा। तदनन्तर बलि ने वामनदेव के चरण को धोकर उस जल को शिर पर धारण किया।

देखते देखते वामनदेव का शरीर आश्चर्यरूप से बढ़ गया। वामनदेव के विशाल शरीर को देखकर राजा बलि स्तम्भित हो उठे।

उस समय भगवान वामन ने एक पैर से पृथ्वी और दूसरे से स्वर्ग नाप लिया। तीसरे पैर के लिए कुछ न देखकर वामनदेव ने बलि से कहा कि तुमने मुझको तीन पैर भूमि दान की है; दो पैर में यह सब कुछ होगया, अब तीसरे पैर के लिए भूमि कहाँ है, दो।

भगवान के इस वाक्य को सुनकर बलि ने कहा, "मैंने जो कुछ कहा है, उसे झूठ कभी न होने दूँगा। आप अपने तीसरे पैर को मेरे मस्तक पर धरदें।" इस प्रकार भगवान ने तीसरा पैर बलि पर रखकर बलि को भी बाँध लिया।

बलि की पत्नी विन्ध्यावलि पति को बँधा हुआ देखकर कहने लगी, "भगवन्, आपने मेरे पति का

सर्वस्व हर कर लिया है । अब इनको तो मुक्त कर दीजिए। जो सामान्य पुरुष हैं, वे भी आपकी चरण-पूजा कर उत्तम गति को प्राप्त करते हैं, और मेरे पति ने तो आपके चरणों में सब कुछ अर्पण कर दिया। इनकी ऐसी दशा न होनी चाहिए।"।

भगवान ने बलि-पत्नी से कहा कि "बलि परम भक्त और सत्यवादी है। वित्तहीन होने, शत्रु द्वारा बाँधे जाने तथा गुरु द्वारा तिरस्कृत और अभिशप्त होने पर भी बलि ने सत्य-धर्म नहीं छोड़ा है । अतएव जो स्थान देवताओं के लिए भी दुर्लभ है, मैंने बलि को वही स्थान दिया है।"

इसके बाद वामनदेव ने बलि से कहा, "तुम अपने जातिवालों के साथ देव-दुर्लभ सुतल में जाओ। तुम्हारा मंगल हो। इस स्थान में तुमको कोई भी कष्ट न पहुँचा सकेगा। मैं स्वयं वहाँ रहकर तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा।"

बलि इसके बाद सुतल में गए । वामनदेव ने स्वर्ग इन्द्र को प्रदान किया।

[३६]

हिरनकस्यप—[सं० हिरण्य-कश्यप] एक प्रसिद्ध विष्णु-विरोधी दैत्यों का राजा। यह प्रह्लाद का पिता था।

विशेष—यह कश्यप और दिति का पुत्र था और भगवान का बड़ा विरोधी था। इसे ब्रह्मा से यह वर मिला था कि मनुष्य, देवता या और किसी प्राणी से तुम्हारा बध नहीं हो सकता। इससे यह अत्यन्त प्रबल और अजेय होगया। जब इसने अपने पुत्र प्रह्लाद को भगवान की भक्ति करने के कारण बहुत सताया और एक दिन उसे खंभे से बाँध और तलवार खींचकर बारबार कहने लगा कि 'बता! अब तेरा भगवान कहाँ है? आकर तुझे बचावे।' तब भगवान नृसिंह (आधा सिंह कौर आधा मनुष्य) का रूप धारण करके खंभा फाड़कर प्रकट हुए और उसे फाड़ डाला। भगवान का चौथा अवतार नृसिंह इसी दैत्य को मारने के लिए हुआ था।

प्रहलाद—[सं० प्रह्लाद] एक दैत्य जो राजा हिरण्य-कश्यप का पुत्र था। यह बचपन से ही बड़ा भगवत्-भक्त था। हिरण्य-कश्यप ने प्रह्लाद को ईश्वर की भक्ति से विचलित करने के लिए अनेक प्रयत्न किए और बहुत कष्ट पहुँ-चाया पर वह विचलित न हुआ। अंत में भगवान् ने नृसिंह रूप धारण कर प्रह्लाद की रक्षा की और हिरण्य-कश्यप को मार डाला।

नरसिंह—[सं० नृसिंह] सिंहरूपी भगवान विष्णु। विष्णु का चौथा अवतार।

विशेष—हरिवंश पुराण में लिखा है कि सत्ययुग में दैत्यों के आदि पुरुष हिरण्य-कश्यप ने घोर तप करके ब्रह्मा से वर माँग लिया कि न मैं देव, असुर, गन्धर्व, नाग, राक्षस या मनुष्य के हाथ से मारा जासकूं, न अस्त्र-शस्त्र, वृक्ष, शैल तथा सूखे या गीले पदार्थ से मरूँ, और न स्वर्ग-मर्त्य आदि किसी लोक में या दिन-रात किसी काल में मेरी मृत्यु होसके। इस प्रकार का वर पाकर वह दैत्य अत्यन्त प्रबल हो उठा और स्वर्ग आदि छीनकर देवताओं को बहुत सताने लगा। देवता लोग विष्णु भगवान की शरण में गए। विष्णु ने उन्हें अभय दान देकर अत्यन्त भीषण नृसिंह मूर्ति धारण की, जिसका आधा शरीर मनुष्य का और आधा सिंह का था। जब यह नृसिंह मूर्ति हिरण्य-कश्यप के पास पहुँची तब उसके पुत्र प्रह्लाद ने कहा कि "यह मूर्ति दैवी है, इसके भीतर सारा चराचर जगत दिखाई पड़ता है। जान पड़ता है कि अब दैत्य-कुल नष्ट होगा।" यह सुनकर हिरण्य-कश्यप ने अपने दैत्यों से नृसिंह को मारने के लिए कहा। पर जितने दैत्य मारने गए सब नष्ट हुए। अंत में हिरण्य-कश्यप आप उठकर युद्ध करने लगा। हिरण्य-कश्यप के क्रुद्ध नेत्रों की ज्वाला से समुद्र का जल खलबला उठा, सारी पृथ्वी डाँवा-

डोल हो उठी और लोकों में हाहाकार मच गया। देवताओं का आर्त्तनाद सुन नृसिंह भगवान अत्यंत भीषण गर्जन करके दैत्य पर झपटे और उन्होंने उसका पेट नखों से फाड़ डाला।

भागवत और विष्णु पुराण में सब कथा तो यही है, केवल प्रह्लाद की भक्ति का प्रसंग अधिक है। भागवत में लिखा है कि हिरण्यकश्यप वर पाकर बहुत प्रबल हुआ और स्वर्ग आदि लोकों को जीतकर राज्य करने लगा। उसके चार पुत्र थे जिनमें प्रह्लाद विष्णु भगवान का बड़ा भारी भक्त था। शुक्राचार्य का पुत्र दैत्यराज के पुत्रों को पढ़ाता था। एक दिन हिरण्य-कश्यप ने परीक्षा के लिए सब पुत्रों को अपने सामने बुलाया और कुछ सुनाने के लिए कहा। प्रह्लाद विष्णु भगवान की महिमा गाने लगा। इसपर दैत्यराज बहुत बिगड़ा। कारण कि वह विष्णु का घोर द्वेषी था। पर बिगड़ने का कुछ भी फल न हुआ। प्रह्लाद की भक्ति दिन पर दिन अधिक होती गई। पिता के द्वारा अनेक ताड़न और कष्ट सहकर भी प्रह्लाद भक्ति पर दृढ़ रहे। धीरे धीरे बहुत से सहपाठी बालकों का दल प्रह्लाद का अनुयायी होगया। इस पर दैत्यराज ने कुपित होकर प्रह्लाद से पूछा कि "तू किसके बल पर इतना कूदता है?" प्रह्लाद ने कहा, 'भगवान के' जिसके बल

पर यह सारा संसार चल रहा है।' हिरण्य-कश्यप ने पूछा ' तेरा भगवान कहाँ है ?" प्रह्लाद ने कहा 'वह सर्वत्र रहता है।' दैत्यराज ने दाँत पीसकर पूछा "क्या इस खंभे में भी है ? ' प्रह्लाद ने कहा, ' अवश्य '। हिरण्य-कश्यप खड्ग लेकर बारबार खंभे की ओर देखने लगा। इतने में खंभे के भीतर से प्रलय के समान शब्द हुआ और नृसिंह ने निकल कर दैत्यराज का बध किया।

[४०]

परसुराम........संचारी—परशुराम जी ने माता रेणुका को पिता की आज्ञा से मारा था और पिता का बदला लेने को २१ बार क्षत्रियों का नाश किया था।

विशेष—परशुराम के पिता का नाम जमदग्नि और माता का नाम रेणुका था। ये ईश्वर के छठें अवतार माने जाते हैं। ' परशु ' इनका मुख्य शस्त्र था, इसी से इनका नाम परशुराम पड़ा।

माता को मारने तथा क्षत्रियों के नाश करने की कथा इस प्रकार है—

एक दिन रेणुका स्नान करने के लिए नदी में गई थी। वहाँ उसने राजा चित्ररथ को अपनी स्त्री के साथ जलक्रीड़ा करते देखा और कामवासना से उद्विग्न होकर घर आई। जमदग्नि उसकी यह दशा देख बहुत

कुपित हुए और उन्होंने अपने चार पुत्रों को एक एक करके रेणुका के वध की आज्ञा दी। पर स्नेहवश किसी से ऐसा न होसका। इतने में परशुराम आए। परशुराम ने आज्ञा पाते ही माता का सिर काट डाला। इस पर जमदग्नि ने प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहा। परशुराम बोले "पहिले तो मेरी माता को जिला दीजिए और फिर यह वर दीजिए कि मैं परमायु प्राप्त करूँ और युद्ध में मेरे सामने कोई न ठहर सके।" जमदग्नि ने ऐसा ही किया। एक दिन राजा कार्त्तवीर्य सहस्रार्जुन जमदग्नि के आश्रम पर आया। आश्रम पर रेणुका को छोड़ और कोई न था। सहस्रार्जुन आश्रम के पेड़ पौधों को उजाड़ होमधेनु का बछड़ा लेकर चल दिया। परशुराम ने आकर जब यह सुना तब वे तुरन्त दौड़े और जाकर सहस्रार्जुन की सहस्र भुजाओं को फरसे से काट डाला। सहस्रार्जुन के कुटुम्बियों और साथियों ने एक दिन आकर जमदग्नि से बदला लिया और उन्हें बाणों से मार डाला। परशुराम ने आश्रम पर आकर जब यह देखा तब पहिले तो बहुत विलाप किया, फिर संपूर्ण क्षत्रियों के नाश की प्रतिज्ञा की। उन्होंने शस्त्र लेकर सहस्रार्जुन के पुत्र, पौत्रादि का वध करके क्रमशः सारे क्षत्रियों का नाश किया। परशुराम की इस क्रूरता पर ब्राह्मण समाज में उनकी

निंदा होने लगी और परशुराम दया से खिन्न हो वन में चले गए। एक दिन विश्वामित्र के पौत्र परावसु ने परशुराम से कहा, "अभी जो यज्ञ हुआ था उसमें न जाने कितने प्रतापी राजा आए थे। आप ने पृथ्वी को जो क्षत्रियहीन करने की प्रतिज्ञा की थी वह सब व्यर्थ थी।" परशुराम इस पर क्रुद्ध होकर फिर निकले और जो क्षत्रिय बचे थे उन सब का बाल-बच्चों सहित संहार किया। गर्भवती स्त्रियों ने बड़ी कठिनता से इधर उधर छिपकर अपनी रक्षा की। क्षत्रियों का नाश करके परशुराम ने अश्वमेध यज्ञ किया और उसमें सारी पृथ्वी कश्यप को दान दे दी। पृथ्वी क्षत्रियों से सर्वथा रहित न होजाय इस अभिप्राय से कश्यप ने परशुराम से कहा, 'अब यह पृथ्वी हमारी हो चुकी। अब तुम दक्षिण की ओर चले जाओ।' परशुराम ने ऐसा ही किया।

पोषे—तर्पण देकर संतुष्ट किया।

बिलग—बुरा भाव।

उदा—(क) देवि करौं कछु विनय सो बिलगु न मानव।—तुलसी

(ख) स्वामिनि अविनय छमबि हमारी।
बिलगु न मानव जानि गँवारी।
—तुलसी

[४१]

सिसुपाल (सं० शिशुपाल)—चेदि देश का एक प्रसिद्ध राजा जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।

विशेष—हरिवंश पुराण में लिखा है कि रुक्मिणी के सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर श्रीकृष्ण उस पर आसक्त होगए थे। उधर श्रीकृष्ण के रूप गुण की प्रशंसा सुनकर रुक्मिणी भी उन पर अनुरक्त हो गई थी। पर श्रीकृष्ण ने कंस की हत्या की थी, इसलिए रुक्म (रुक्मिणी का भाई) उनसे बहुत द्वेष रखता था। जरासंध (कंस के श्वसुर) ने भीष्मक से कहा था कि तुम अपनी कन्या रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ कर दो। भीष्मक इस प्रस्ताव से सहमत होगए। जब विवाह का समय आया, तब श्रीकृष्ण और बलराम भी वहाँ पहुँच गए। विवाह से एक दिन पहिले रुक्मिणी रथ पर चढ़कर इन्द्राणी की पूजा करने गई थी। जब वह पूजन करके मंदिर से बाहर निकली, तब श्रीकृष्ण उसे अपने रथ पर बैठाकर लेचले। समाचार पाकर शिशुपाल आदि अनेक राजा वहाँ आपहुँचे और श्रीकृष्ण के साथ उनका युद्ध होने लगा। श्रीकृष्ण उन सबको परास्त करके रुक्मिणी को वहाँ से हर लेगए। बाद में द्वारकापुरी में रुक्मिणी के साथ कृष्ण का विवाह

[३९]

हुआ। कहते हैं कि रुक्मिणी के गर्भ से श्रीकृष्ण को दश पुत्र और एक कन्या हुई थी।

भीषम [सं० भीष्मक]—विदर्भ देश के राजा जो रुक्मिणी के पिता थे।

दुलही—दुलहिन ; यहाँ रुक्मिणी से अभिप्राय है।

[४३]

कृतकृत—[सं० कृतकृत्य] जिसका काम पूरा हो चुका हो ; कृतार्थ ; सफल-मनोरथ।

बारि—(सं० वारि) न्योछावर करके।

[४५]

' मधुकर ' के अर्थ तो वास्तव में भ्रमर के होते हैं, किन्तु यहाँ उससे तात्पर्य ' कृष्ण ' से है।

मनु.........प्रथमहि—गोपियों को ऐसा प्रतीत हुआ मानों कृष्णचन्द्र पहले उद्धव के रूप में प्रकट हुए ;

प्रगट्यौ.........धरि—बाद में भ्रमर का रूप धरकर प्रकट हुए।

[४७]

मसिहारे—काले॥

जोग भुयंग—योगरूपी सर्प।

[४८]

वा पुर—मथुरापुरी से अभिप्राय है।

गोरस—दूध, दही, मक्खन आदि।

[४९]

आरसी—दर्पण, शीशा।

उदा०—कहा कुसुम कह कौमुदी, कितिक आरसी जोति।
जाकी उजराई लखे, आँख ऊजरी होति।
—बिहारी।

[५०]

दुखित प्रेम आनन्द—हम प्रेमानंदियों को दुःखी करना चाहता है।

[५२]

बेकारी—व्यर्थ।

[५३]

खल—योग-कर्म से अभिप्राय है।

[५४]

संथा—पाठ, सबक़।
जोग चटसार मैं—योग की पाठशाला में।

[५७]

इंद्रिन को मेला—योग-साधना।

[५८]

मधुबन—ब्रजभूमि के एक वन का नाम।

[५९]

तन स्याम—श्रीकृष्णचंद्र जी।
चौरंगी—चतुर।

त्रिभंगी—जो तीन जगह से टेढ़ा हो। यहाँ त्रिभंगी से अभिप्राय श्रीकृष्णचंद्र जी से है। कृष्ण जी बाँसुरी बजाते समय पैर, कमर और गर्दन टेढ़ी कर खड़े होते थे, इसी से त्रिभंगी कहलाते थे।

त्रिभंगी नारि—कुब्जा दासी; यह भी तीन जगह से झुकी थी।

[६०]

भृँग संग्या करि—भ्रमर नाम धर के।

[६३]

निज मरजाद सों—अपनी बुद्धि की मर्यादा के अनुसार।

रोपि—निरूपण कर के; विवेचन कर के।

कुल लज्जा करि लोपि—वंश की प्रतिष्ठा आदि सब को भूल-कर।

[६४]

परे—श्रेष्ठ।

पटतर—समता।

यथा—वैदेही मुख पटतर दीन्हे।
होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे।
—तुलसी।

[६५]

पारस—एक कल्पित पत्थर जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यदि लोहा उससे छुलाया जाय तो सोना होजाता है। किन्तु यहाँ पारस से अभिप्राय 'स्वच्छ और उत्तम' से है।

[६९]

जीवन मूलि—संजीवन-मूरि अर्थात् अति प्रिय वस्तु। यहाँ 'अति प्रिय वस्तु' से तात्पर्य 'गोपियों के शुद्ध और निर्मल प्रेम' से है, जिसे उद्धव ने गोकुल जाकर प्राप्त किया था।

[७१]

जे तुमको अवलंबहीं—जो तुम्हारा आश्रय मानती हैं।

[७२]

नातरु—नहीं तो।

[७३]

कलपतरोरुह—कल्पवृक्ष।

विशेष—पुराणानुसार देवलोक का एक वृक्ष जो समुद्र मथने के समय समुद्र से निकला हुआ और चौदह रत्नों में माना जाता है। यह इंद्र को दिया गया था। हिंदुओं का विश्वास है कि इससे जिस वस्तु की प्रार्थना की जाय, वही यह देता है। इसका नाश कल्पांत तक नहीं होता। इसी प्रकार का एक पेड़ मुसलमानों के स्वर्ग में भी है, जिसे वे तूबा कहते हैं।

[७५]

पुंजनी—राशि, समूह।

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.